UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180282
UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library

Call No H83.1
P46P

Name Of Book पञ्चप्रसून

Name Of Authur प्रेमचन्द

पञ्च-प्रसून

लेखक:—

श्रीप्रेमचन्द्

प्रकाशक—

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

२०३, हरिसन रोड, कलकत्ता।

शाखा— { ज्ञानवापी, काशी।
दरीबा कलां, दिल्ली।

प्रथमबार] १९३४ [मूल्य ॥)

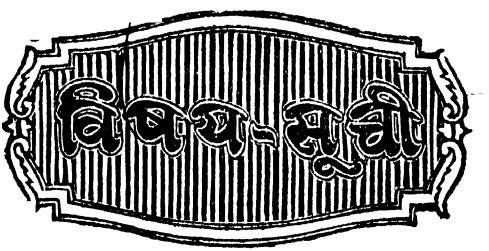

विषय				पृष्ठ
१—बैंकका दिवाला		...	...	१
२—शान्ति	...	...	...	३८
३—शंखनाद	...	...	...	६३
४—आत्माराम	...	...	...	७५
५—बूढ़ी काकी	...	...	...	८७

बैंकका दिवाला

१

लखनऊ नेशनल बैंकके बड़े दफ्तरमें लाला साईंदास आराम कुर्सीपर लेटे हुए शेयरोंका भाव देख रहे थे और सोच रहे थे कि इस बार हिस्सेदारोंका मुनाफा कहांसे दिया जायगा? चाय, कोयला या जूटके हिस्से खरीदने, चांदी, सोने या रूईका सट्टा करनेका इरादा करते, लेकिन नुकसानके भयसे कुछ तै न कर पाते थे। नाजके व्यापारमें इस बार बड़ा घाटा रहा, हिस्सेदारों-के ढाढ़सके लिये हानि-लाभका कल्पित ब्यौरा दिखाना पड़ा और नफा पुंजीसे देना पड़ा। इससे फिर नाजके व्यापारमें हाथ डालते जी कांपता था।

पर रुपयेको बेकार पड़ा रखना असम्भव था। दो एक दिनमें उसे कहीं-न-कहीं लगानेका उचित उपाय करना जरूरी था, क्योंकि डाइरेक्टरोंकी तिमाही बैठक एक ही सप्ताहमें होनेवाली थी और यदि उस समय कोई निश्चय न हुआ तो आगे तीन

महीनेतक फिर कुछ न हो सकेगा और छः माहीके मुनाफेके बँट-वारेके समय फिर वही फरजी कार्रवाई करनी पड़ेगी, जिसका बार-बार सहन करना बैंकके लिये कठिन था। बहुत देरतक इस उलझनमें पड़े रहनेके बाद साईंदासने घण्टी बजायी, इसपर बगलके दूसरे कमरेसे एक बंगाली बाबूने सिर निकालकर झांका।

साईंदास - टाटा स्टील कम्पनीको एक पत्र लिख दीजिये कि अपना नया बैलेंस शीट भेज दें।

बाबू—उन लोगोंका रुपयाका गरज नहीं। चिट्ठीका जवाब नहीं देता।

साईंदास—अच्छा, नागपुर स्वदेशी मिलको लिखिये।

बाबू—इसका कारोबार अच्छा नहीं है। अभी उसके मजूरों-ने हड़ताल किया था। दो महीनातक मील बन्द रहा।

साईंदास—अजी तो कहीं लिखो भी। तुम्हारी समझमें तो सारी दुनियां बेईमानोंसे भरी है।

बाबू—बाबा लिखनेको तो हम सब जगह लिख दें, मगर खाली लिख देनेसे तो कुछ लाभ नहीं होता।

लाला साईंदास अपनी कुल प्रतिष्ठा और मर्यादाके कारण बैंकके मैनेजिंग डाइरेक्टर हो गये थे, पर व्यावहारिक बातोंसे अपरिचित थे। यहा बंगाली बाबू इनके सलाहकार थे और बाबू साहबको किसी कारखाने या कम्पनीपर भरोसा न था। इन्हींके अविश्वासके कारण पिछले साल बैंकका रुपया

सन्दूकसे बाहर न निकल सका था और अब वही रंग फिर दिखायी देता था। साईंदासको इस कठिनाईसे बचनेका कोई उपाय न सूझता था। न इतनी हिम्मत थी कि अपने भरोसे किसी व्यापारमें हाथ डालें। बेचैनीकी दशामें उठकर कमरेमें टहलने लगे, कि दरवानने आकर खबर दी—बरहलकी महारानी-की सवारी आयी है।

२

लाला साईंदास चौंक पड़े। बरहलकी महारानीको लखनऊ आये तीन-चार दिन हुए थे और हरेकके मुंहसे उन्हींकी चर्चा सुनायी देती थी। कोई पहनावपर मुग्ध था, कोई सुन्दरतापर, कोई उनकी स्वच्छन्द वृत्तिपर। यहांतक कि उनकी दासियां और सिपाही आदि भी लोगोंके चर्चापात्र बने हुए थे। रायल होटलके द्वारपर दर्शकोंकी भीड़-सी लगी रहती। कितने ही शौकीन, बेफिकरे, इतरफरोश, बजाज, तम्बाकूगरका वेष धरकर उनका दर्शन कर चुके थे। जिधर महारानीकी सवारी निकल जाती दर्शकोंके ठट्ठ लग जाते थे। वाह वाह क्या शान है! ऐसी इराकी जोड़ी लाट साहबके सिवा किसी राजा रईसके यहां तो शायद ही निकले और सजावट भी क्या खूब है! भई! ऐसे गोरे आदमी तो यहां कभी नहीं दिखाई देते। यहां तो धनाढ्य लोग मृगांक और चन्द्रोदय और ईश्वर जाने क्या-क्या खाक-बला खाते रहते हैं, परन्तु किसीके बदनपर तेज या प्रकाशका नाम नहीं। यह लोग न जानें क्या भोजन करते और किस कुएं का

जल पीते हैं कि जिसे देखिये ताजा सेव बना हुआ है। यह सब जलवायुका प्रभाव है।

बरहल उत्तर दिशामें नैपालके समीप अङ्गरेजी राज्यमें एक रियासत थी। यद्यपि जनता उसे बहुत मालदार समझती थी, पर वास्तवमें उस रियासतकी आमदनी दो लाखसे अधिक न थी। हां, क्षेत्रफल बहुत विस्तृत था। बहुत भूमि ऊसर और उजाड़ थी। बसा हुआ भाग भी पहाड़ी और अनुपजाऊ था और जमीन बहुत सस्ती उठती थी।

लाला साईंदासने तुरत अलगनीसे उतारकर रेशमी सूट पहन लिया और मेजपर आकर इस शानसे बैठ गये मानों राजा-रानियोंका यहां आना कोई असाधारण बात नहीं है। दफ्तरके क्लर्क भी संभल गये। सारे बैंकमें सन्नाटेकी हलचल पैदा हो गयी। दरवानने पगड़ी संभाली। चौकीदारने तलवार निकाली और अपने स्थानपर खड़ा हो गया। पंखाकुलीकी मीठी नींद भी टूटी और बंगाली बाबू महारानीके स्वागतके लिये दफ्तरसे बाहर निकले।

साईंदासने बाहरी ठाट तो बना लिया। किन्तु चित्त आशा और भयसे चंचल हो रहा था। एक रानीसे व्यवहार करनेका यह पहला ही अवसर था, घबराते थे कि बात करते बने या न बने, रईसोंका मिज़ाज आसमानपर होता है। मालूम नहीं, मैं बात करनेमें कहां चूक जाऊं। उन्हें इस समय अपनेमें एक कमी मालूम हो रही थी। वह राजसी नियमोंसे अनभिज्ञ थे। उनका

सम्मान किस प्रकार करना चाहिये, उनसे बातें करनेमें किन बातोंका ध्यान रखना चाहिये, उनकी मर्यादा-रक्षाके लिये कितनी नम्रता उचित है, इस प्रकारके प्रश्नोंसे वह बड़े असमंजसमें पड़े हुए थे और जी चाहता था कि किसी तरह इस परीक्षासे शीघ्र मुक्ति हो जाय। व्यापारियों और मामूली जमींदारों या रईसोंसे वह रुखाई और सफाईका बर्ताव किया करते थे और पढ़े-लिखे सज्जनोंसे शील और शिष्टताका। उन अवसरोंपर उन्हें किसी विशेष विचारकी आवश्यकता न होती थी, पर उन्हें इस समय ऐसी परेशानी हो रही थी, जैसी किसी लंकावासीको तिब्बतमें हो, जहांके रस्म व रिवाज और बातचीतका उसे ज्ञान न हो।

यकायक उनकी दृष्टि घड़ीपर पड़ी। तीसरे पहरके चार बज चुके थे परन्तु घड़ी अभी दो पहरकी नींदमें मग्न थी। तारीखकी सूईने दौड़में समयको भी मात कर दिया था। वह जल्दीसे उठे कि घड़ीको ठीक कर दें कि इतनेमें महारानीका कमरेमें पदार्पण हुआ। साईंदासने घड़ीको छोड़ा और महारानीके निकट जा बगलमें खड़े हो गये। निश्चय न कर सके कि हाथ मिलाऊं या झुककर सलाम करूं। रानीजीने स्वयं हाथ बढ़ाकर उन्हें इस उलझनसे छुड़ाया।

जब लोग कुर्सियोंपर बैठ गये तो रानीके प्राइवेट सेक्रेटरीने व्यवहारी बातचीत आरम्भ की। बरहलकी पुरानी गाथा सुनाने-के बाद उसने उन उन्नतियोंका वर्णन किया जो रानी साहिबाके प्रयत्नसे हुई थीं। इस समय नहरोंकी एक शाख निकालनेके लिये

दस लाख रुपयोंकी आवश्यकता थी और यद्यपि रानी साहिबा किसी अङ्गरेजी बैंकसे रुपये ले सकती थीं, परन्तु उन्होंने एक हिन्दुस्तानी बैंकसे ही काम करना अच्छा समझा। अब यह निर्णय नेशनल बैंकके हाथमें था कि वह इस अवसरसे लाभ उठाना चाहता है या नहीं ?

बंगाली बाबू - हम रुपया दे सकता है ; मगर कागज-पत्तर देखे बिना कुछ नहीं कर सकता।

सेक्रेटरी—आप कोई जमानत चाहते हैं ?

साईंदास उदारतासे बोले, महाशय, जमानतके लिये आपकी जबान काफी है।

बंगाली बाबू—आपके पास रियासतका कोई हिसाब-किताब है ?

लाला साईंदासको अपने हेड क्लर्कका यह दुनियादारीका बर्ताव अच्छा न लगता था। वह इस समय उदारताके नशेमें चूर थे। महारानीकी सूरत ही पक्की जमानत थी, उनके सामने कागज और हिसाबका वर्णन करना बनियापन जान पड़ता था जिससे अविश्वासकी गन्ध आती है।

महिलाओंके सामने हम शील और संकोचके पुतले बन जाते हैं। बंगाली बाबूकी ओर क्रूर, कठोर दृष्टिसे देखकर बोले कि कागजोंकी जांच कोई आवश्यक बात नहीं है, केवल हमको विश्वास होना चाहिये।

बंगाली बाबू—डाइरेक्टर लोग कभी न मानेगा।

साईंदास—हमको इसकी परवा नहीं। हम अपनी जिम्मेदारीपर रुपये दे सकते हैं।

रानीने साईंदासकी ओर कृतज्ञतापूर्ण दृष्टिसे देखा। उनके होठोंपर हल्की मुस्कुराहट दिखलायी पड़ी।

३

परन्तु डाइरेक्टरोंने हिसाब-किताब; आय-व्यय देखना आवश्यक समझा और यह काम लाला साईंदासके ही सुपुर्द हुआ क्योंकि और किसीको अपने कामोंसे फुर्सत न थी कि एक पूरे दफ्तरका मुआइना करता। साईंदासने नियम पालन किया। तीन-चार दिनतक हिसाब जांचते रहे। तब अपने इतमीनानके अनुकूल रिपोर्ट लिखी। मामला तय हो गया। दस्तावेज लिखा गया, रुपया दिया गया, ६) सैकड़े व्याज ठहरा।

तीन सालतक बैंकके कारबारमें अच्छी उन्नति हुई। छठे महीने बिना कहे-सुने पैंतालीस हजारकी थैली दफ्तरमें आ जाती थी। व्यवहारियोंको ५) सैकड़े व्याज दे दिया जाता था। हिस्सेदारोंको ७) सैकड़े लाभ।

साईंदाससे सब लोग प्रसन्न थे। सब लोग उनकी सूझ-बूझकी प्रशंसा करते थे, यहांतक कि बंगाली बाबू भी धीरे-धीरे उनके कायल होते जाते थे। साईंदास उनसे कहा करते, बाबूजी विश्वास संसारसे न कभी लोप हुआ है और न होगा। सत्यपर विश्वास रखना प्रत्येक मनुष्यका धर्म है। जिस मनुष्यके चित्तसे यह विश्वास जाता रहता है उसे मृतक समझना चाहिये। उसे जान

पड़ता है कि मैं चारों ओर शत्रुओंसे घिरा हुआ हूं। बड़े-से-बड़ा सिद्ध महात्मा भी उन्हें रंगा हुआ सियार जान पड़ता है। सच्चे-से-सच्चा देश प्रेमी उसकी दृष्टिमें अपनी प्रशंसाका भूखा ही ठहरता है। संसार उसे धोखे और छलसे परिपूर्ण दिखाई देता है। यहांतक कि उसके मनसे परमात्मापर श्रद्धा और भक्ति लुप्त हो जाती है। एक प्रसिद्ध फिलास्फरका कथन है कि प्रत्येक मनुष्य-को जबतक कि उसके विरुद्ध कोई प्रत्यक्ष प्रमाण न पाओ भला-मानस समझो। वर्तमान शासन-प्रथा इसी महत्वपूर्ण सिद्धान्तपर गठित है। और घृणा तो किसीसे करनी ही न चाहिये। हमारी आत्माएं पवित्र हैं, उनसे घृणा करना परमात्मासे घृणा करनेके समान है। यह मैं नहीं कहता कि संसारमें कपट-छल हैं ही नहीं, है और बहुत अधिकतासे है, परन्तु उसका निवारण अविश्वाससे नहीं, मानव-चरित्रके ज्ञानसे होता है और यह एक ईश्वरदत्त गुण है। मैं यह दावा तो नहीं करता, परन्तु मुझे विश्वास है कि मैं मनुष्यको देखकर उसके आन्तरिक भावोंतक पहुंच जाता हूं। कोई कितना ही वेष बदले, रंग-रूप संवारे, परन्तु मेरी अन्तःदृष्टिको धोखा नहीं दे सकता। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि विश्वास-से विश्वास उत्पन्न होता है और अविश्वाससे अविश्वास। यह प्राकृतिक नियम है। जिस मनुष्यको आप आरंभसे ही धूर्त्त, कपटी, दुर्जन समझ लेंगे, वह कभी आपसे निष्कपट व्यवहार न करेगा। वह हठात् आपको नीचा दिखानेका यत्न करेगा। इसके विपरीत आप एक चोरपर भी भरोसा करें तो वह आपका दास

हो जायगा। सारे संसारको लूटे परन्तु आपको धोखा न देगा। वह कितना ही कुकर्मी, अधम क्यों न हो पर आप उसके गलेमें विश्वासकी जंजीर डालकर उसे जिस ओर चाहें ले जा सकते हैं। यहांतक कि वह आपके हाथों पुण्यात्मा बन सकता है।

बंगाली बाबूके पास इन दार्शनिक तर्कोंका कोई उत्तर न था।

४

चौथे वर्षको पहली तारीख थी। लाला साईंदास बकके दफ्तर-में बैठे हुए डाकियेकी राह देख रहे थे। आज बरहलसे पैंतालीस हजार रुपये आवेंगे। अबकी उनका इरादा था कि कुछ सजावट-के सामान और मोल लें। अबतक बैंकमें टेलीफोन नहीं था इसका भी तखमीना मांग लिया था। आशाकी आभा चेहरेसे झलक रही थी! बंगाली बाबूसे हँसकर कहते थे इस तारीखको मेरे हाथोंमें अदबदाके खुजली होने लगती है आज भी हथेली खुजला रही है। कभी दफ्तरीसे कहते, अरे मियां सफकत! जरा शकुन तो विचारो, केवल सूद-ही-सूद आ रहा है या दफ्तरवालोंके लिये नजराना शुकराना भी है। आशाका प्रभाव कदाचित स्थानपर भी होता है। बैंक आज खिला हुआ दिखलायी पड़ता था।

डाकिया ठीक समय आया। साईंदासने लापरवाईसे उसकी ओर देखा। उसने अपने थैलेसे कई रजिस्टरी लिफाफे निकाले, साईंदासने उन लिफाफोंको उड़ती निगाहसे देखा। बरहलका कोई लिफाफा न था। न बीमा, न मुहर, न वह लिखावट। कुछ

निराशा-सी हुई। जीमें आया डाकियेसे पूछें। कोई और रजिस्टरी रह तो नहीं गयी, पर रुक गये। दफ्तरके क्लर्कोंके सामने इतना अधैर्य्य अनुचित था। किन्तु जब डाकिया चलने लगा तब उनसे न रहा गया। पूछ ही बैठे। अरे भाई, कोई बीमा लिफाफा रह तो नहीं गया? आज उसे आना चाहिये था। डाकियेने कहा—सरकार भला ऐसी बात है और कहीं भूल-चूक हो जाय पर आपके काममें भूल हो सकती है?

साईंदासका चेहरा उतर गया, जैसे कच्चे रंगपर पानी पड़ जाय। डाकिया चला गया तो बंगाली बाबूसे बोले, यह देर क्यों हुई? पहले तो कभी ऐसा न होता था।

बंगाली बाबूने निष्ठुर भावसे उत्तर दिया, किसी कारणसे देर हो गया होगा। घबरानेकी कोई बात नहीं।

निराशा असम्भवको सम्भव बना देती है। साईंदासको इस समय यह ख्याल हुआ कि कदाचित पारसलसे रुपये आते हों। हो सकता है तीन हजार अशर्फियोंका पारसल करा दिया हो। यद्यपि इस विचारको औरोंपर प्रकट करनेका उन्हें साहस न हुआ पर उन्हें यह आशा उस समयतक बनी रही जबतक पारसलवाला डाकिया वापस नहीं गया। अन्तमें सन्ध्याको वह बेचैनीकी दशामें उठकर घर चले गये। अब खत या तारका इन्तजार था। दो-तीन बार झुंझलाकर उठे कि डांटकर पत्र लिखूं और साफ-साफ कह दूं कि लेन-देनके मामलेमें वादा न पूरा करना विश्वासघात है। एक दिनकी देर भी बैंकके लिये घातक हो सकती है, कि जिसमें

फिर कभी ऐसी शिकायत करनेका अवसर न मिलेगा। परन्तु फिर कुछ सोचकर न लिखा।

शाम हो गयी थी, कई मित्र आ गये थे। गपशप होने लगी, कि पोस्टमैनने आकर शामकी डाक साईंदासको दी। यों वह पहले अखबारोंको खोला करते थे पर आज चिट्ठियां खोलीं। किन्तु बरहलका कोई खत न था। तब बेमन हो एक अङ्गरेजी अखबार और पहले ही तारका शीर्षक लेख देखकर उनका खून सर्द हो गया।

कल शामको बरहलकी महारानीजीका तीन दिनकी बीमारी के बाद देहान्त हो गया।

इसके आगे एक संक्षेप नोटमें यह लिखा हुआ था :—

"बरहलकी महारानीकी अकाल मृत्यु केवल इस रियासतके लिये ही नहीं, किन्तु समस्त प्रान्तके लिये एक शोकजनक घटना है। बड़े-बड़े भिषगाचार्य (वैद्यराज) अभी रोगकी परख भी न कर पाये थे कि मृत्युने काम तमाम कर दिया। रानीजीको सदैव अपनी रियासतकी उन्नतिका ध्यान रहता था। उनके थोड़े राज्यकालमें उनसे रियासतको जो लाभ हुए हैं, वे चिरकालतक स्मरण रहेंगे। यद्यपि यह मानी हुई बात थी कि राज्य उनके बाद दूसरेके हाथमें जायगा तथापि यह विचार कभी रानी साहिबाके कर्तव्य-पालनका बाधक नहीं बना। शास्त्रानुसार उन्हें रियासतकी जमानतपर ऋण लेनेका अधिकार न था। परन्तु प्रजाकी भलाईके विचारसे उन्हें कई बार इस नियमका उल्लंघन

करना पड़ा। हमें विश्वास है कि यदि वह कुछ दिन और जीवित रहतीं तो रियासतको ऋणसे मुक्त कर देतीं। उन्हें रात-दिन इसका ध्यान रहता था। परन्तु असामयिक—मृत्युने अब यह फैसला दूसरोंके अधीन कर दिया। देखना चाहिये इन दोनोंका क्या परिणाम होता है। हमें विश्वस्त रीतिसे मालूम हुआ है कि नये महाराजने जो आजकल लखनऊमें विराजमान हैं, अपने वकीलोंकी सम्मतिके अनुसार मृतक महारानीके ऋण सम्बन्धी हिसाबोंके चुकानेसे इनकार कर दिया है। हमें भय है कि इस निश्चयसे महाजनी टोलेमें बड़ी हलचल पैदा होगी और कितने ही धन सम्पत्तिके लखनऊके स्वामियोंको शिक्षा मिल जायगी कि ब्याजका लोभ कितना अनिष्टकारी होता है।"

लाला साईंदासने अखबार मेजपर रख दिया और आकाशकी ओर देखा, जो निराशाका अन्तिम आश्रय है। अन्य मित्रोंने यह समाचार पढ़ा। इस प्रश्नपर बाद-विवाद होने लगा। साईंदास पर चारों ओरसे बौछार पड़ने लगी। सारा दोष उनके सिर मढ़ा गया और उनकी चिरकालिक कार्य-कुशलता और परिणाम-दर्शिता मिट्टीमें मिल गयी। बैंक इतना बड़ा घाटा सहनेमें असमर्थ था। अब यह विचार उपस्थित हुआ कि कैसे उसकी प्राणरक्षा की जाय।

५

ज्योंही शहरमें यह खबर फैली, लोग अपने रुपये वापस लेनेके लिये आतुर हो गये। सुबहसे शामतक लेनदारोंका तांता

लगा रहता था, जिन लोगोंका धन चलतू हिसाबमें जमा था उन्होंने तुरत निकाल लिया, कोई उज्र न सुना। यह उसी पत्रके लेखका फल था कि नेशनल बैंककी साख उठ गयी थी। धीरज-से काम लेते तो बैंक सम्भल जाता परन्तु आन्धी और तूफानमें कौनसी नौका स्थिर रह सकती है। अन्तमें खजांनचीने टाट उलट दिया। बैंककी नसोंसे इतनी रक्त-धारें निकलीं कि वह प्राणरहित हो गया।

तीन दिन बीत चुके थे। बैंकघरके सामने सहस्रों आदमी एकत्र थे। बैंकके द्वारपर सशस्त्र सिपाहियोंका पहरा था। नाना प्रकार-की अफवाहें उड़ रही थीं। कभी खबर उड़ती, लाला साईंदासने विष पान कर लिया। कोई उनके पकड़े जानेकी सूचना लाता था। कोई कहता था डाइरेक्टर हवालातके भीतर हो गये।

यकायक सड़कपरसे एक मोटर निकला और बैंकके सामने आकर रुक गया। किसीने कहा, बरहलके महाराजका मोटर है। इतना सुनते ही सैकड़ों मनुष्य मोटरकी ओर घबराये हुए दौड़े और मोटरको घेर गिया।

कुंवर जगदीशसिंह महारानीकी मृत्युके बाद वकीलोंसे सलाह लेने लखनऊ आये थे। बहुत कुछ सामान भी खरीदना था। वे इच्छायें जो चिरकालसे ऐसे सुअवसरकी प्रतीक्षामें थीं अब बंधे पानीकी भांति राह पाकर उबली पड़ती थीं। यह मोटर आज ही लिया गया था। नगरमें एक कोठी लेनेकी बातचीत हो रही थी। बहुमूल्य विलास वस्तुओंसे लदी एक गाड़ी बरहलके

लिये चल चुकी थी। यहां भीड़ देखी तो सोचा कि कोई नवीन नाटक होनेवाला है। मोटर रोक दिया कि इतनेमें सैकड़ों आदमियोंकी भीड़ लग गयी।

कुंवर साहबने पूछा, यहां आपलोग क्यों जमा हैं? कोई तमाशा होनेवाला है क्या?

एक महाशय जो देखनेमें बिगड़े रईस मालूम होते थे, बोले, जी हां, बड़ा मजेदार तमाशा है।

कुंवर—किसका तमाशा है।

.....तकदीरका।

कुंवर महाशयको यह उत्तर पाकर आश्चर्य तो हुआ; परन्तु सुनते आये थे कि लखनऊवाले बात बातमें बात निकाला करते हैं। उसी ढङ्गसे उत्तर देना आवश्यक हुआ। बोले, तकदीरका खेल देखनेके लिये यहां आना तो आवश्यक नहीं।

लखनवी महाशयने कहा, आपका कहना सच है, लेकिन दूसरी जगह यह मजा कहां? यहां सुबहसे शामतकके बीचमें भाग्यने कितनोंको धनीसे निर्धन और निधनसे भिखारी बना दिया। सवेरे जो लोग महलोंमें बैठे थे इस समय उन्हें वृक्षकी छाया भी नसीब नहीं। जिनके द्वारपर सदाव्रत खुले थे उन्हें इस समय रोटियोंके लाले पड़े हैं। अभी एक सप्ताह पहले जो लोग कालगति, भाग्यके खेल और समयके फेरको कवियोंकी उपमा समझते थे, इस समय उनकी आह और करुणाक्रन्दन वियोगियोंको भी लज्जित करता है ऐसे तमाशे और कहां देखनेमें आवेंगे।

कुंवर—भगवन्, आपने तो पहेलीको और गूढ़ कर दिया। मैं देहाती हूं, मुझसे साधारण तौरसे बात कीजिये।

इसपर एक सज्जने कहा, महोदय, यह नेशनलबैंक है। इसका दिवाला निकल गया है। आदाब अर्ज, मुझे पहचाना? कुंवर महोदयने उनकी ओर देखा तो मोटरसे कूद पड़े और उनसे हाथ मिलाते हुए बोले, अरे मिस्टर नसीम? तुम यहां कहां भाई तुमसे मिलकर बड़ा आनन्द हुआ।

मिस्टर नसीम कुंवर साहबके साथ देहरादून कालेजमें पढ़ते थे। दोनों साथ-साथ देहरादूनकी पहाड़ियोंपर सैर करने जाया करते थे परन्तु जबसे कुंवर महाशयने घरके झंझटोंसे विवश होकर कालेज छोड़ा, दोनों मित्रोंमें भेंट न हुई थी। नसीम भी उनके आनेके कुछ समय पीछे अपने घर लखनऊ चले आये थे।

नसीमने उत्तर दिया, शुक्र है, आपने पहचाना तो। कहिये अब तो पौ बारह है। कुछ दोस्तोंकी भी सुध है।

कुंवर—सच कहता हूं, तुम्हारी याद हमेशा आया करती थी। कहो आरामसे तो हो। मैं रायल होटलमें टिका हुआ हूं, आज आओ तो इतमीनानसे बातचीत हो।

नसीम—जनाब, इतमीनान तो नेशनल बैंकके साथ चला गया। अब तो रोजीकी फिक्र सवार है। जो कुछ जमा पूंजी थी, सब आपको भेंट हुई। इस दीवालेने फकीर बना दिया। अब आपके दरवाजे पर आकर धरना दूंगा।

कुंवर तुम्हारा घर है। बेखटके आओ। मेरे साथ ही क्यों

न चलो। क्या बतलाऊं मुझे कुछ भी ध्यान नहीं था कि मेरे इनकार करनेका यह असर होगा। जान पड़ता है, बैंकने बहुतेरों-को तबाह कर दिया।

नसीम—घर-घर मातम छाया हुआ है। मेरे पास तो इन कपड़ोंके सिवा और कुछ नहीं रहा।

इतनेमें एक तिलकधारी पण्डितजी आ गये और बोले, महा-राज, आपके शरीरपर वस्त्र तो हैं, यहां तो धरती आकाश कहीं ठिकाना नहीं है। मैं राघोजी पाठशालाका अध्यापक हूं। पाठ-शालाका सब धन इसी बैंकमें जमा था। पचास विद्यार्थी इसीके आसरे संस्कृत पढ़ते थे और भोजन पाते थे। कलसे पाठशाला बन्द हो जायगी। दूर-दूरके विद्यार्थी हैं। वे अपने घर किस प्रकार पहुंचेंगे, यह ईश्वर ही जाने।

एक महाशय जिनके सिरपर पंजाबी ढंगकी पगड़ी थी, गाढ़े-का कोट और चमरौधा जूता पहने हुए थे, आगे बढ़ आये और नेतृत्वके भावसे बोले, महाशय, इस बैंकके फेलियरने कितने ही इन्स्टीट्यूशनोंको समाप्त कर दिया। लाला दीनानाथका अनाथा-लय अब एक दिन भी नहीं चल सकता। उसका एक लाख रुपया डूब गया। अभी पन्द्रह दिन हुए मैं डेपुटेशनसे लौटा तो पन्द्रह हजार रुपये अनाथालयकोषमें जमा किये थे, मगर अब कहीं कौड़ीका भी ठिकाना नहीं।

एक बूढ़ेने कहा, साहब, मेरी तो जिन्दगी भरकी कमाई मिट्टीमें मिल गयी अब कफनका भी भरोसा नहीं।

धीरे-धीरे और लोग एकत्र हो गये और साधारण बातचीत होने लगी। प्रत्येक मनुष्य अपने पासवालेको अपनी दुःखकथा सुनाने लगा। कुंवर महोदय आध घंटातक नसीमके साथ खड़े ये विपदकथाएं सुनते रहे। ज्योंही मोटरपर बैठे और होटलकी ओर चलनेकी आज्ञा दी, त्योंही उनकी दृष्टि एक मनुष्यपर पड़ी, जो पृथ्वीपर सिर झुकाये बैठा था। यह एक अहीर था, लड़कपनमें कुंवर साहबके साथ खेला था। उस समय उनमें ऊंच-नीचका विचार न था। साथ कबड्डी खेले थे। साथ पेड़ोंपर चढ़े और चिड़ियोंके बच्चे चुराये थे। जब कुंवरजी देहरादून पढ़ने गये, तब वह अहीरका लड़का शिवदास अपने बापके साथ लखनऊ चला आया। उसने यहां एक दूधकी दूकान खोल ली थी। कुंवर साहबने उसे पहिचाना और उच्च स्वरसे पुकारा, अरे शिवदास! इधर देखो।

शिवदासने बोली सुनी, परन्तु सिर ऊपर न उठाया। वह अपने स्थानसे बैठा हो कुंवर साहबको देख रहा था। बचपनके वह दिन याद आ रहे थे, जब वह जगदीशके साथ गुल्ली-डंडा खेलता था, जब दोनों बुड्ढे गफूर मियाँको मुँह चिढ़ाकर घरमें छिप जाते थे, जब वह इशारेसे जगदीशको गुरुजीके पाससे बुला लेता और दोनों रामलीला देखने चले जाते। उसे विश्वास था कि कुंवरजी मुझे भूल गये होंगे। वह लड़कपनकी बातें, अब कहां, कहां मैं और कहां वह! लेकिन जब कुंवर साहबने उसका नाम लेकर बुलाया तो उनसे प्रसन्न होकर मिलनेके बदले उसने

और भी सिर नीचा कर लिया और वहांसे टल जाना चाहा। कुंवर साहबकी सहृदयतामें अब वह साम्य भाव न था। मगर कुंवर साहब उसे हटते देखकर मोटरसे उतरे और उसका हाथ पकड़कर बोले, अरे शिवदास, क्या मुझे भूल गये ?

शिवदास अब अपने मनोवेगको रोक न सका। उसके नेत्र डबडबा गये। कुंवरके गले लिपट गया और बोला, भूला तो नहीं, परन्तु आपके सामने आते हुए लज्जा आती है।

कुंवर—यहां दूधकी दूकान करते हो क्या ? मुझे मालूम ही न था, नहीं तो अठवारोंसे पानी पीते-पीते जुकाम क्यों होता, आओ इस मोटरपर बैठ जाओ। मेरे साथ होटलतक चलो। तुमसे बातें करनेको जी चाहता है। तुम्हें बरहल ले चलूंगा और एक बार फिर गुल्ली-डंडे खेलेंगे।

शिवदास—ऐसा न कीजिये, नहीं तो देखनेवाले हँसेंगे। मैं होटलमें आ जाऊंगा। वहीं हजरतगंजवाले होटलमें ठहरे हैं न ?

कुंवर—अवश्य आओगे न ?

शिवदास—आप बुलायेंगे और मैं न आऊंगा ?

कुंवर—यहां कैसे बैठे हो। दूकान तो चल रही है न ?

शिवदास—आज सवेरेतक तो चलती थी। आगेका हाल नहीं मालूम ?

कुंवर—तुम्हारे रुपये भी बैंकमें जमा थे क्या ?

शिवदास—जब आऊंगा तो बताऊंगा ?

कुंवर साहब मोटर पर आ बैठे और ड्राइवरसे बोले, होटल-की ओर चलो।

ड्राइवर—हुजूरने ह्वाइटवे कम्पनीकी दूकानपर चलनेकी आज्ञा दी थी।

कुंवर—अब उधर न जाऊंगा।

ड्राइवर—जेकब साहब बारिस्टरके यहां भी न चलूं ?

कुंवर—(झुंझलाकर) नहीं, कहीं मत चलो, मुझे सीधे होटल पहुंचाओ।

निराशा और विपत्तिके इन दृश्योंने जगदीशसिंहके चित्तमें यह प्रश्न उपस्थित कर दिया था कि "अब मेरा क्या कर्त्तव्य है ?"

६

आजसे सात वर्ष पूर्व जब बरहलके महाराजा ठीक युवा-वस्थामें घोड़ेसे गिरकर मर गये थे, वरासतका प्रश्न उठा तो महाराजाके कोई सन्तान न होनेके कारण वंश-क्रम मिलानेसे उनके सगे चचेरे भाई ठाकुर रामसिंहको वरासतका हक पहुंचता था। उन्होंने दावा किया। लेकिन न्यायालयोंने रानीको हकदार ठहराया। ठाकुर साहबने अपीलें कीं, प्रिवी कौंसिलतक गये, परन्तु सफलता न हुई। मुकदमेबाजीमें लाखों रुपये नष्ट हुए, अपने पासकी मिलकियत भी हाथसे जाती रही किन्तु हारकर भी वह चैनसे नहीं बैठे। सदव विधवा रानीको छेड़ते रहते। कभी असामियोंको भड़काते, कभी हाकिमोंसे रानीकी बुराई करते, कभी उन्हें जाली मुकदमोंमें फंसानेका उपाय करते। परन्तु

रानी भी बड़े जीवटकी स्त्री थीं। वह ठाकुर साहबके प्रत्येक आघातका मुंहतोड़ उत्तर देतीं। हां, इस खींचातानीमें इन्हें बड़ी-बड़ी रकमें व्यय करनी पड़तीं। असामियोंसे रुपये वसूल न होते। इसलिये उन्हें बारम्बार ऋण लेना पड़ता था। परन्तु कानूनके अनुसार उन्हें ऋण लेनेका अधिकार नहीं था। इसलिये उन्हें या तो इस व्यवस्थाको छिपाना पड़ता था, या सूदकी गहरी दर स्वीकार करनी पड़ती थी।

कुंवर जगदीशसिंहका लड़कपन तो लाड़ प्यारसे बीता था परन्तु जब ठाकुर रामसिंह मुकदमेबाजियोंसे बहुत तंग आ गये और यह सन्देह होने लगा कि कहीं रानीकी चालोंसे कुंवर साहबका जीवन संकटमें न पड़ जाय तो उन्होंने विवश हो कुंवर साहबको देहरादून भेज दिया। कुंवर साहब वहां दो वर्ष-तक तो आनन्दसे रहे, किन्तु ज्योंही कालेजकी प्रथम श्रेणीमें पहुंचे ठाकुर साहब परलोकवासी हो गये। कुंवरसाहबको शिक्षा-क्रम छोड़ना पड़ा। बरहल चले आये। सिरपर कुटुम्ब-पालन और रानीसे पुरानी शत्रुताके निभानेका बोझ आ पड़ा। उस समयसे महारानीके मृत्यु-कालतक उनकी दशा बहुत अवनत रही। ऋण या स्त्रियोंके गहनोंके सिवा और कोई आधार न था। उसपर कुल-मर्यादा-रक्षाकी चिन्ता भी थी। यही तीन वर्ष उनके लिये कठिन परीक्षाका समय था। आये दिन साहूकारोंसे काम पड़ता था। उनके निर्दय-वाणोंसे कलेजा छिद गया था, हाकिमोंके कठोर व्यवहार और अत्याचार भी सहने पड़ते। परन्तु

सबसे हृदय-विदारक अपने आत्मीयजनोंका बर्ताव था जो सामने घात न करके बगली चोटें करते थे। मित्रता और ऐक्यकी आड़-में कपटका हाथ चलाते थे। इन कठोर यातनाओंने कुँवर साहबको अधिकार, स्वेच्छा और धन-सम्पत्तिका जानी दुश्मन बना दिया था। वह बड़े भावुक पुरुष थे। सम्बन्धियोंकी अकृपा और देश बन्धुओंकी दुर्नीति उनके हृदयपर काला चिह्न बनती जाती थीं। साहित्य-प्रेमने उन्हें मानव प्रकृतिका तत्वान्वेषी बना दिया था और जहां यह ज्ञान उन्हें प्रति दिन सभ्यतासे दूर लिये जाता था वहां उनके चित्तमें जनसत्ता और साम्यवादके विचार पुष्ट करता जाता था। उनपर प्रकट हो गया था कि यदि सद्-व्यवहार जीवित है तो वह झोपड़ों और गरीबीमें है उस कठिन समयमें जब चारों ओर अन्धेरा छाया हुआ था, उन्हें कभी-कभी सच्ची सहानुभूतिका प्रकाश यहीं दृष्टिगोचर हो जाता था। धन-सम्पत्तिको वह श्रेष्ठ प्रसाद नहीं ईश्वरीय प्रकोप समझते थे, जो मनुष्यके हृदयसे दया और प्रेमके भावोंको मिटा देती है। यह वह मेघ है जो चित्तके प्रकाशित तारोंपर छा जाता है।

परन्तु महारानीके मृत्युके बाद ज्योंही धन-सम्पत्तिने उनपर वार किया, बस दार्शनिक तर्कोंकी यह ढाल चूर-चूर हो गयी। आत्म निदर्शनकी शक्ति नाश हो गयी। वे मित्र बन गये जो शत्रु सरीखे थे, और जो सच्चे हितैषी थे वे विस्मृत हो गये। साम्य-वादके मनोगत विचारोंमें घोर परिवर्तन आरम्भ हो गया। हृदयमें सहिष्णुताका उद्भव हुआ। त्यागने भोगकी ओर सिर झुका

दिया। मर्य्यादाकी बेड़ी गलेमें पड़ी। वे अधिकारी जिन्हें देखकर उनके तीवर बदल जाते थे, अब उनके सलाहकार बन गये। दीनता और दरिद्रताको जिससे उन्हें सच्ची सहानुभूति थी देखकर अब वह आंखें मींच लेते थे।

इसमें सन्देह नहीं कि कुंवर साहब अब भी साम्यवादके भक्त थे किन्तु उन विचारोंके प्रकट करनेमें वह पहलेकी भी स्वतंत्रता न थी। विचार अब व्यवहारसे डरता था। कथनको कार्यरूपमें परिणत करनेका उन्हें अवसर प्राप्त था, पर अब कार्यक्षेत्र उन्हें कठिनाइयोंसे घिरा हुआ जान पड़ता था। बेगारके वह जानी दुश्मन थे परन्तु अब बेगारको बन्द करना दुष्कर प्रतीत होता था। स्वच्छता और स्वास्थ्य रक्षाके वह भक्त थे किन्तु अब धन-व्ययका ध्यान न करके भी उन्हें ग्रामवासियोंकी ही ओरसे विरोधकी शंका होती थी। असामियोंसे पोत उगाहनेमें कठोर बर्तावको वह पाप समझते थे मगर अब कठोरताके बिना काम चलता न जान पड़ता था। सारांश यह कि कितने ही सिद्धान्त जिनपर उनकी श्रद्धा थी अब असंगत प्रतीत होते थे।

परन्तु आज जो दुःखजनक दृश्य बैंकके इहातेमें नजर आये उन्होंने उनके दयाभावको जागृत कर दिया। उस मनुष्यकी-सी दशा हो गयी जो नौकामें बैठा सुरम्य तटकी शोभाका आनन्द उठाता हुआ किसी श्मशानके सामने आ जाय, चितापर लाशें जलती देखे, शोक-सन्तप्तोंके करुण-क्रन्दनको सुने और नावसे उतरकर उनके दुःखमें सम्मिलित हो जाय।

रातके दस बज गये थे। कुंवर साहब पलंगपर लेटे हुए थे। बैंकके इहातेका दृश्य आंखोंके सामने नाच रहा था। वही विलाप-ध्वनि कानोंमें आ रही थी। चित्तमें प्रश्न हो रहा था, क्या इस विडम्बनाका कारण मैं हूं? मैंने वही किया जिसका मुझे कानूनन अधिकार था। यह बैंकके संचालकोंकी भूल है कि उन्होंने बिना पूरी जमानतके इतनी बड़ी रकम कर्ज दे दी। लेनदारोंको उन्हीं-की गरदन नापनी चाहिये। मैं कोई खुदाई फौजदार नहीं हूं कि दूसरोंकी नादानीका फल भोगूं। फिर विचार पलटा—मैं नाहक इस होटलमें ठहरा। चालीस रुपये प्रतिदिन देने पड़ेंगे। कोई चार सौ रुपयेके मत्थे जायगी। इतना सामान भी व्यर्थ ही लिया, क्या आवश्यकता थी? मखमली गद्दे की कुरसियोंसे, या शीशेके सामानोंकी सजावटसे मेरा गौरव नहीं बढ़ सकता। कोई साधा-रण मकान पांच रुपये किरायेपर ले लेता तो क्या काम न चलता? मैं और साथके सब आदमी आरामसे रहते। यही न होता, लोग निन्दा करते। इसको क्या चिन्ता। जिन लोगोंके मत्थे यह ठाट कर रहा हूं, वह गरीब तो रोटियोंको तरसते हैं। यही दस-बारह हजार रुपये लगाकर कुएं बनवा देता तो सहस्रों दीनोंका भला होता। अब फिर लोगोंके चकमेमें न आऊंगा। यह मोटरकार व्यर्थ है। मेरा समय इतना महंगा नहीं है कि घंटा आध घंटाकी किफा-यतके लिये दो सौ रुपये महीनेका खर्च बढ़ा लूं। फाका करने-वाले असामियोंके सामने मोटर दौड़ाना उनकी छातियोंपर मूंग दलना है। माना कि वह रोबमें आ जायंगे। जिधरसे निकल

जाऊंगा सैकड़ों स्त्रियां और बच्चे देखनेके लिये खड़े हो जायंगे। मगर केवल इतने ही दिखावके लिये इतना खर्च बढ़ाना मूर्खता है। यदि दूसरे रईस ऐसा करते हैं तो करें, मैं उनकी बराबरी क्यों करूं? अबतक दो हजार रुपये सालानामें मेरा निर्वाह हो जाता था। अब दोके बदले चार हजार बहुत है और फिर मुझे दूसरोंकी कमाईको इस प्रकार उड़ानेका अधिकार ही क्या है? मैं कोई उद्योग-धन्धा, कोई कारोबार नहीं करता जिसका यह नफा हो। यदि मेरे पुरुषाओंने हठधर्मी और जबरदस्तीसे इलाका अपने वशमें कर लिया तो मुझे उनके लूटके धनमें शरीक होनेका क्या अधिकार है? जो लोग परिश्रम करते हैं उन्हें अपने परिश्रमका पूरा फल मिलना चाहिये। राज्य उन्हें केवल दूसरोंके कठोर हाथोंसे बचाता है। इस सेवाका उसे उचित मुआवजा मिलना चाहिये। बस मैं तो राज्यकी ओरसे यह मुआवजा वसूल करनेके लिये नियत हूं। इसके अतिरिक्त इन गरीबोंकी कमाईमें मेरा और कोई भाग नहीं है। यह बेचारे दीन हैं, मूर्ख हैं, बेजबान हैं। इस समय हम इन्हें चाहें जितना सता लें। इन्हें अपने स्वत्वका ज्ञान नहीं है। अपने महत्वको नहीं समझते, पर एक समय अवश्य आयेगा, जब उनके मुंहमें भी जबान होगी अपने अधिकारका ज्ञान होगा और तब हमारी दशा बुरी होगी। ये भोग-विलास मुझे अपने असामियोंसे दूर किये देते हैं। मेरी बड़ाई इसीमें है कि इन्हींमें रहूं, इन्हींकी भांति जीवन निर्वाह करूं और इनकी सहायता करूं।

हां, तो इस बैंकको क्या करूं। कोई छोटी-मोटी बात होती तो कहता लाओ जिस तरह सिरपर बहुतसे भार हैं उसी प्रकार यह भी एक सही पर असली और सूदके सिवा महाजनोंके भी तो तीन लाख रुपये अलग आते हैं। रियासतकी आमदनी डेढ़ दो लाख रुपया सालाना है अधिक है नहीं। मैं इतना बड़ा साहस करूं भी तो किस बिरतेपर। हां, यदि वैरागी हो जाऊं तो सम्भव है कि मेरे जीवनमें—यदि कहीं अचानक मृत्यु न हो जाय तो यह झगड़ा पाक हो जाय। इस अग्निमें कूदना अपने सम्पूर्ण जीवन, अपनी उमंगों और अपनी आशाओंको भस्म करना है। आह! इस दिनकी प्रतीक्षामें हमने क्या-क्या कष्ट नहीं भोगे। पिताजी-ने इसी चिन्तामें प्राण त्याग किये। यह शुभ मुहूर्त्त, हमारी अन्धेरी रातके लिये दूरका दीपक था। हम इसीके आश्रय जीवित थे। सोते जागते सदैव इसीकी चर्चा रहती थी। इससे चित्तको कितना सन्तोष और कितना अभिमान था। उपवासके दिन भी हमारे तेवर मैले न होते थे। जब इतने धैर्य और असन्तोषके बाद अच्छे दिन आये तो उससे कैसे विमुख हुआ जाय? और फिर अपनी ही चिन्ता तो नहीं, रियासतकी उन्नतिकी कितनी ही स्कीमें सोच चुका हूं, क्या अपनी इच्छाओंके साथ उन विचारोंको भी त्याग दूं? इस अभागी रानीने मुझे बुरी तरह फँसाया। जबतक जीता रही कभी चैनसे न बैठने दिया। मरी तो मेरे सिर यह बला डाल दी। परन्तु मैं दरिद्रतासे इतना डरता क्यों हूं? दरिद्रता कोई पाप नहीं है। यदि मेरा त्याग हजारों

घरानोंको कष्ट और दुरवस्थासे बचाये तो मुझे उससे मुँह न मोड़ना चाहिये। केवल सुखसे जीवन व्यतीत करना ही हमारा ध्येय नहीं है? हमारी मान, प्रतिष्ठा और कीर्त्ति सुखभोग हीसे तो नहीं हुआ करती। राज-मन्दिरोंमें रहनेवाले और विलासमें रत राना प्रतापको कौन जानता है? यह उनका आत्म-समपण और कठिन व्रत पालन ही है जिसने उन्हें हमारी जातिका सूर्य्य बना दिया है। श्रीरामचन्द्रने यदि अपना जीवन सुख-भोगमें बिताया होता तो आज हम उनका नाम भी न जानते। उनके आत्मबलिदानने ही उन्हें अमर बना दिया है। हमारी प्रतिष्ठा, धन और विलासपर अवलम्बित नहीं है, मैं मोटरपर सवार हुआ तो क्या और टट्टूपर चढ़ा तो क्या। होटलमें ठहरा तो क्या और किसी मामूली घरमें ठहरा तो क्या। बहुत होगा तो ताल्लुकेदार लोग मेरी हँसी उड़ायेंगे इसकी परवा नहीं। मैं तो हृदयसे चाहता हूं कि उन लोगोंसे अलग-अलग रहूं। यदि इतनी ही निन्दासे सैकड़ों परिवारोंका भला हो जाय तो मैं मनुष्य नहीं जो प्रसन्नतासे उसे सहन न करूं। यदि अपने घोड़े और फिटन, सैर और शिकार, नौकर-चाकर और स्वार्थ-साधक हितमित्रोंसे रहित होकर मैं सहस्रों अमीर गरीब कुटुम्बोंका, विधवाओं और अनाथोंका भला कर सकूं तो मुझे इसमें कदापि विलम्ब न करना चाहिये। सहस्रों परिवारोंके भाग्य इस समय मेरी मुट्ठीमें हैं। मेरा सुख-भोग उनके लिये विष और मेरा आत्मसंयम उनके लिये अमृत है। मैं अमृत बन सकता हूं तो विष क्यों

बनूं ? और फिर इसे आत्म-त्याग समझना भी मेरी भूल है। यह एक संयोग है कि मैं आज इस जायदादका अधिकारी हूं। मैंने उसे कमाया नहीं। उसके लिये रक्त नहीं बहाया, पसीना नहीं बहाया। यदि यह जायदाद मुझे न मिली होती तो मैं सहस्रों दीन भाइयोंकी भाँति आज जीविकोपार्जनमें लगा रहता। मैं क्यों न भूल जाऊं कि मैं इस राज्यका स्वामी हूं। ऐसे ही अवसरोंपर मनुष्यकी परख होती है। मैंने वर्षों पुस्तकावलोकन किया, वर्षों परोपकार सिद्धान्तका अनुयायी रहा। यदि इस समयमें उन सिद्धान्तोंको भूल जाऊं और स्वार्थको मनुष्यता और सदाचार-से बढ़ने दूं तो वस्तुतः यह मेरी अत्यन्त कायरता और स्वार्थ-परता होगी। भला स्वार्थ-साधनको शिक्षाके लिये गीता, मिल, एमर्सन और अरस्तूका शिष्य बननेकी क्या आवश्यकता थी? यह पाठ तो मुझे अपने दूसरे भाइयोंसे यों ही मिल जाता। प्रच-लित प्रथासे बढ़कर और कौन गुरु था। साधारण लोगोंकी भांति क्या मैं भी स्वार्थके सामने सिर झुका दूं, तो फिर विशे-षता क्या रही। नहीं मैं कानशंस (विवेकबुद्धि)का खून न करूंगा जहां पुण्य कर सकता हूं पाप न करूंगा। परमात्मन्! तुम मेरी सहायता करो, तुमने मुझे राजपूतके घर जन्म दिया है मेरे कर्म-से इस महान् जातिको लज्जित न करो। नहीं; कदापि नहीं। यह गर्दन स्वार्थके सम्मुख न झुकेगी। मैं राम, भीष्म और प्रताप-का वंशज हूं। शरीर-सेवक न बनूंगा।

कुंवर जगदीशसिंहको इस समय ऐसा ज्ञान हुआ मानों

वह किसी ऊंचे मीनारपर चढ़ गये हैं। चित्त अभिमानसे पूरित हो गया। आंखें प्रकाशमान हो गयीं। परन्तु एक ही क्षणमें इस उमंगका उतार होने लगा। ऊंचे मीनारसे नीचेकी ओर आंखें गयीं, सारा शरीर कांप उठा। उस मनुष्यकी-सी दशा हो गयी जो किसी नदीके तटपर बैठा हुआ उसमें कूदनेका विचार कर रहा हो।

उन्होंने सोचा, क्या मेरे घरके लोग मुझसे सहमत होंगे? यदि मेरे कारण वह सहमत हो जायं तो क्या मुझे अधिकार है कि अपने साथ उनकी इच्छाओंका भी बलिदान करूं? और तो और माताजी कभी न मानेंगी और कदाचित् भाई लोग भी अस्वीकार करें। रियासतकी हैसियतके देखते हुए वह कमसे कम दस हजार सालानाके भागी हैं और उनके भागमें मैं किसी प्रकार हस्तक्षेप नहीं कर सकता। मैं केवल अपना मालिक हूं। परन्तु मैं भी तो अकेला नहीं हूं। सावित्री स्वयं चाहे मेरे साथ आगमें कूदनेको तैयार हो, किन्तु अपने प्यारे राजपुत्रको इस आंचके समीप कदापि न आने देगी।

कुंवर महाशय और अधिक न सोच सके। वह एक विकल-दशामें पलंगपरसे उठ बैठे और कमरेमें टहलने लगे। थोड़ी देर बाद उन्होंने जंगलेसे बाहरकी ओर झांका और किवाड़ खोलकर बाहर चले आये। चारों ओर अन्धेरा था, उनकी चिन्ताओंकी भांति अपार और भयकारी सामने गोमती नदी बहती थी। वह धीरे-धीरे नदीके तटपर चले गये और देरतक वहां टहलते रहे।

आकुल हृदयको जल-तरङ्गोंसे प्रेम होता है शायद इसलिये कि लहरें भी व्याकुल हैं। उन्होंने अपने चंचल चित्तको फिर एकाग्र किया। यदि रियासतकी आमदनीसे यह सब वृत्तियां दी जायंगी तो ऋणका सूद निकलना भी कठिन होगा। मूलका क्या कहना है। क्या आयमें बढ़ती नहीं हो सकती? अभी अस्तबलमें बीस घोड़े हैं, मेरे लिये एक बस है। नौकरोंकी संख्या सौसे कम नहीं होगी। मेरे लिये दो भी अधिक हैं। यह अनुचित है कि अपने ही भाइयोंसे नीच सेवाएं करायी जायं। उन मनुष्योंको मैं अपने सीरकी जमीन दे दूंगा, सुखसे खेती करेंगे और मुझे आशीर्वाद देंगे। बागीचेके फल अबतक डालियोंके भेंट हो जाते थे। अब उन्हें बेचूंगा और सबसे बड़ी आमदनी तो बयाईकी है। केवल महेशगंजके बाजारसे दस हजार रुपये आते हैं। यह सब आमदनी महन्तजी उड़ा जाते हैं। उनके लिये एक हजार रुपये साल बहुत होने चाहिये। अबकी इस बाजारका ठीका करूंगा। आठ हजार-से कम न मिलेंगे। इन मदोंसे २५ हजार वार्षिक आय होगी, सावित्री और लल्ला (लड़का) के लिये एक हजार रुपया माह-वार काफी है। मैं सावित्रीसे स्पष्ट कह दूंगा कि या तो एक हजार रुपया मासिक लो और मेरे साथ रहो या रियासतकी आधी आमदनी ले लो और मुझे छोड़ दो। रानी बननेकी इच्छा हो तो खुशीसे बनो, परन्तु मैं राजा न बनूंगा।

अचानक कुंवर साहबके कानोंमें आवाज आई "रामनाम सत्य है।" उन्होंने पीछे मुड़कर देखा। कई मनुष्य एक लाशको

लिये आते थे। उन लोगोंने नदी तीर चिता सजायी और आग लगा दी। दो स्त्रियां चिल्लाकर रो रही थीं। इस विलापका कुँवर साहबके चित्तपर कुछ प्रभाव न पड़ा। वह चित्तमें लज्जित हो रहे थे कि मैं कितना पाषाण-हृदय हूं। एक दीन मनुष्यकी लाश जल रही है। स्त्रियां रो रही हैं और मेरा हृदय तनिक भी नहीं पसीजता। पत्थरकी मूर्त्तिकी भांति खड़ा हूं! एकबारगी एक स्त्रीने रोते हुए कहा "हाय मेरे राजा! तुम्हें विष कैसे मीठा लगा?" यह हृदय-विदारक विलाप सुनते ही कुँवर साहबके चितमें एक घाव-सा लग गया। करुणा सजग हो गयी और नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। कदाचित् इस दुखियाने विष-पान करके प्राण दिये हैं। हाय उसे विष कैसे मीठा लगा! इसमें कितनी करुणा है, कितना दुःख, कितना आश्चर्य! विष तो कड़वा पदार्थ है। वह क्योंकर मीठा हो गया। कटुविषके बदले जिसने अपने मधुर प्राण दे दिये, उसपर कोई बड़ी मुसीबत पड़ी होगी। ऐसी ही दशामें विष मधुर हो सकता है। कुँवर साहब तड़प गये। कारुणिक शब्द बार-बार उनके हृदयमें गूंजते थे। अब उनसे वहां न खड़ा रहा गया। वह उन आदमियोंके पास आये और एक मनुष्यसे पूछा "क्या बहुत दिनोंसे बीमार थे?" इस मनुष्यने कुँवर साहबकी ओर आंसू भरे नेत्रोंसे देखकर कहा, नहीं साहब, कहांकी बीमारी, अभी आज सन्ध्यातक भलीभांति बातें कर रहे थे। मालूम नहीं संध्याको क्या खा लिया कि खूनकी कै होने लगी। जबतक वैद्यराजके यहां जांय, तबतक आंखें उलट गयीं।

नाड़ी छूट गयी। वद्यराजने आकर देखा तो कहा, अब क्या हो सकता है ? अभी कुल बाईस-तेईस वषकी अवस्था थी। ऐसा पट्ठा सारे लखनऊमें नहीं था।

कुँवर—कुछ मालूम हुआ विष क्यों खाया !

उस मनुष्यने सन्देह दृष्टिसे देखकर कहा, महाशय ! और तो कोई बात नहीं हुई। जबसे यह बड़ा बैंक टूटा है बहुत उदास रहते थे। कई हजार रुपये बैंकमें जमा किये थे। घी, दूध, मलाई-की बड़ी दूकान थी। बिरादरीमें मान था। वह सारी पूंजी डूब गयी। हम लोग रोकते रहे कि बैंकमें रुपया मत जमा करो, किंतु होनहार तो यह थी किसीकी नहीं सुनी। आज सवेरेको स्त्रीसे गहने मांगते थे कि बन्धक रखकर अहीरोंको दूधका दाम दे दें। उससे बातों-बातोंमें झगड़ा हो गया। बस न जाने क्या खा लिया।

कुँवर साहबका हृदय कांप उठा, तुरन्त ध्यान आया, शिव-दास तो नहीं है। पूछा, इनका नाम शिवदास तो नहीं था ? उस मनुष्यने विस्मयसे देखकर कहा, हां यही नाम था, क्या आपसे जान-पहचान थी ?

कुँवर—हां, हम और वह बहुत दिनोंतक बरहलमें साथ-साथ खेले थे। आज शामको वह हमसे बैंकमें मिले थे। यदि उन्होंने मुझसे तनिक भी चर्चा की होती, तो मैं यथा-शक्ति उनकी सहायता करता—शोक !

उस मनुष्यने अब ध्यानपूर्वक कुँवर साहबको देखा और

जाकर स्त्रियोंसे कहा, चुप हो जाओ, बरहलके महाराजा आये हैं, इतना सुनते ही शिवदासकी माताने जोर-जोरसे सिर पीटा और रोती हुई आकर कुँवरके पैरोंपर गिर पड़ी। उसके मुखसे केवल यह शब्द निकले—"बेटा, बचपनमें जिसे तुम भैया कहा करते थे ....." और गला फँस गया।

कुँवर महाशयकी आँखोंसे भी अश्रुपात हो रहा था। शिवदासकी मूर्त्ति उनके सामने खड़ी यह कहती हुई दीख पड़ती थी, तुमने मित्र होकर मेरे प्राण लिये!

७

भोर हो गया। परन्तु कुँवर साहबको नींद नहीं आयी। जबसे वह गोमती तीरसे लौटे थे उनके चित्तपर एक वैराग्य-सा छाया हुआ था। वह कारुणिक दृश्य, उनके स्वार्थ तर्कोंको छिन्न-भिन्न किये देता था। सावित्रीके विरोध, लल्लाके निराशायुत हठ और माताके कुछ शब्दोंका अब उन्हें लेशमात्र भी भय न था। सावित्री कुढ़ेगी, कुढ़े। लल्लाको भी संग्रामके क्षेत्रमें कूदना पड़ेगा, कोई चिन्ता नहीं। माता प्राण देनेपर तत्पर होगीं, क्या हर्ज है। मैं अपने स्त्री-पुत्र तथा हितमित्रादिके लिये सहस्रों परिवारोंकी हत्या न करूंगा। हाय! शिवदासको जीवित रखनेके लिये मैं ऐसी कितनी रियासतें छोड़ सकता हूं। सावित्रीको भूखों मरना पड़े, लल्लाको मजदूरी करनी पड़े, मुझे द्वार-द्वार भीख मांगना पड़े तब भी दूसरोंका गला न दबाऊंगा। अब बिलम्बका अवसर नहीं है, न जाने आगे यह दीवाला और क्या-क्या आपत्तियां खड़ी करे।

मुझे इतना आगा पीछा क्यों हो रहा है। यह केवल आत्म निर्बलता है। वरना यह कोई ऐसा बड़ा काम नहीं जो किसीने न किया हो। आये दिन लोग लाखों रुपये दान-पुण्य करते हैं। मुझे अपने कर्त्तव्यका ज्ञान है। उससे क्यों मुंह मोड़ूं, जो कुछ हो, चाहे सिरपर जो पड़े, इसकी क्या चिन्ता (घंटी बजायी) एक क्षणमें अरदली आंखें मलता हुआ आया।

कुंवर साहब बोले, अभी जेकब साहब बारिस्टरके पास जाकर मेरा सलाम दो। जाग गये होंगे। कहना जरूरी काम है। नहीं यह पत्र लेते जाओ। मोटर तैयार करा लो!

८

मिस्टर जेकबने कुंवर साहबको बहुत समझाया कि आप इस दलदलमें न फँसें, नहीं तो निकलना कठिन होगा। मालूम नहीं अभी कितनी ऐसी रकमें हैं, जिनका आपको पता नहीं है। परन्तु चित्तमें दृढ़ हो जानेवाला निश्चय चूनेका फर्श है, जिसको आपत्तिके थपेड़े और भी पुष्ट कर देते हैं। कुँवर साहब अपने निश्चयपर दृढ़ रहे। दूसरे दिन समाचारपत्रोंमें छपवा दिया कि मृतक महारानीपर जितना कर्ज है वह हम सकारते हैं और नीयत समयके भीतर चुका देंगे।

इस विज्ञापनके छपते ही लखनऊमें खलबली पड़ गयी। बुद्धिमानोंकी सम्मतिमें यह कुँवर महाशयकी नितान्त भूल थी और जो लोग कानूनसे अनभिज्ञ थे उन्होंने सोचा कि इसमें अवश्य कोई भेद है। ऐसे बहुत कम मनुष्य थे जिन्हें कुँवर साहबकी

नीयतकी सच्चाईपर विश्वास आया हो। परन्तु कुँवर साहबका बखान चाहे न हुआ हो, आशीर्वादकी कमी न थी। बैंकके हजारों गरीब लेनदार सच्चे हृदयसे उन्हें आशीर्वाद दे रहे थे।

एक सप्ताहतक कुँवर साहबको सिर उठानेका अवकाश न मिला। मिस्टर जेकबका विचार सत्य हुआ। देनी प्रतिदिन बढ़ती जाती थी। कितने ही नोट ऐसे मिले जिनका उन्हें कुछ भी पता न था। जौहरियों और अन्य बड़े-बड़े दूकानदारोंका लेना भी कम न था। अनुमान तेरह चौदह लाखका था। मोजान बीस लाख-तक जा पहुंचा। कुँवर साहब घबराये। शंका हुई, ऐसा न हो कि मुझे भाइयोंका गुजारा भी बन्द करना पड़े, जिसका उन्हें कोई अधिकार नहीं था। यहांतक कि सातवें दिन उन्होंने कई साहूकारोंको बुरा भला कहकर सामनेसे दूर किया। जहां व्याज-दार अधिक थी उसे कम कराया और जिन रकमोंकी मीयाद बीत चुकी थी उन्हें नकार दिया।

उन्हें साहूकारोंकी कठोरतापर क्रोध आता था। उनके विचारमें महाजनोंको डूबते धनको एक भाग पाकर ही सन्तोष कर लेना चाहिये था। इतनी खींचातानी करनेपर भी कुल देनी उन्नीस लाखसे कम न हुई।

कुँवर साहब इन कामोंसे अवकाश पाकर एक दिन नेशनल बैंककी ओर जा निकले। बैंक खुला हुआ था। मृतक शरीरमें प्राण आ गये थे। लेनदारोंकी भीड़ लगी हुई थी। लोग प्रसन्न-चित्त लौटे जा रहे थे। कुँवर साहबको देखते ही सैकड़ों मनुष्य बड़े

प्रेमसे उनकी ओर दौड़े, किसीने रोकर, किसीने पैरोंपर गिरकर और किसीने सभ्यतापूर्वक अपनी कृतज्ञता प्रकट की। वे बैंकके कार्यकर्ताओंसे भी मिले। लोगोंने कहा, इस विज्ञापनने बैंकको जीवित कर दिया। बंगाली बाबूने लाला साईंदासकी आलोचना की—"वह समझता था संसारमें सब मनुष्य भलामानुष है। हमको उपदेश करता था। अब उसका आंख खुल गया है! अकेला घरमें बैठा रहता है। किसीको मुँह नहीं देखा। हम सुनता है वह यहांसे भाग जाना चाहता था। परन्तु बड़ा साहब बोला, तुम भागेगा तो तुम्हारा ऊपर वारण्ट जारी कर देगा।"

अब साईंदासकी जगह बंगाली बाबू मैनेजर हो गये थे।

इसके बाद कुँवर साहब बरहल आये। भाइयोंने यह वृत्तान्त सुना तो बिगड़े, अदालतकी धमकी दी। माताजीको ऐसा धक्का पहुंचा कि वह उसी दिन बीमार हो गयीं और एक ही सप्ताहमें इस संसारसे विदा हो गयीं। सावित्रीको भी चोट लगी, पर उसने केवल सन्तोष ही नहीं किया, पतिकी उदारता और त्यागकी प्रशंसा भी की। रह गये लाल साहब। उन्होंने जब देखा कि अस्तबलसे घोड़े निकले जाते हैं, हाथी मकनपुरके मेलेमें बिकनेके लिये भेज दिये गये हैं। कहार बिदा किये जा रहे हैं तो व्याकुल हो पितासे बोले, बाबूजी! यह सब नौकर, घोड़े, हाथी कहां जा रहे हैं?

कुँवर—एक राजा साहबके उत्सवमें।

लालजी—कौनसे राजा?

कुँवर—उनका नाम राजा दीनसिंह है।

लालजी—कहां रहते हैं?

कुँवर—दरिद्रपुर।

लालजी—तो हम भी जायंगे।

कुँवर—तुम्हें भी ले चलेंगे, परन्तु इस बारातमें पैदल चलनेवालोंका सम्मान सवारोंसे अधिक होगा।

लालजी—तो हम भी पैदल चलेंगे।

कुँवर—वहां परिश्रमी मनुष्यकी प्रशंसा होती है।

लालजी—तो हम सबसे ज्यादा परिश्रम करेंगे।

कुँवर साहबके दोनों भाई पांच-पांच हजार रुपयेका गुजारा लेकर अलग हो गये। कुँवर साहब अपने और अपने परिवारके लिये कठिनाईसे एक हजार सालानाका प्रबन्ध कर सके, परन्तु यह आमदनी एक रईसके लिये किसी तरह पर्याप्त नहीं है। अतिथि अभ्यागत प्रति दिन टिके ही रहते हैं। उन सबका भी सत्कार करना पड़ता है। बड़ी कठिनाईसे निर्वाह होता है। इधर एक वर्षसे शिवदासके कुटुम्बका भार भी सिरपर आ पड़ा है। परन्तु कुँवर साहब कभी अपने निश्चयपर शोक नहीं करते। उन्हें कभी किसीने चिन्तित नहीं देखा। उनका मुखमण्डल धैर्य और सच्चे अभिमानसे सदैव प्रकाशित रहता है। साहित्य-प्रेम पहलेसे था। अब बागवानीसे प्रेम हो गया है। अपने बागमें प्रातःकालसे शामतक पौदोंकी देख-रेख किया करते हैं और लालसाहब तो पक्के कृषक होते दिखाई देते हैं। अभी नौ दस वर्षसे

अधिक अवस्था नहीं है, लेकिन अन्धेरे मुँह खेतोंमें पहुंच जाते हैं। खाने-पीनेकी भी सुध नहीं रहती।

उनका घोड़ा मौजूद है। परन्तु महीनों उसपर नहीं चढ़ते। उनकी यह धुन देखकर कुँवर साहब बहुत प्रसन्न रहते हैं और कहा करते हैं, मैं रियासतके भविष्यकी ओरसे निश्चिन्त हूं। लालसाहब कभी इस पाठको न भूलेंगे। घरमें सम्पत्ति होती तो सुख-भोग, आखेट और दुराचारके सिवा और क्या सूझता! सम्पत्ति बेचकर हमने परिश्रम और सन्तोष खरीदा और यह सौदा बुरा नहीं। सावित्री इतनी सन्तोषी नहीं। वह कुँवरसाहब-के रोकनेपर भी असामियोंसे छोटी-मोटी भेंट ले लिया करती है और कुल-प्रथा नहीं छोड़ना चाहती।

१

जब मैं ससुराल आई तो बिल्कुल फूहर थी। न पहनने-ओढ़नेका सहूर न बातचीत करनेका ढङ्ग। सिर उठाकर किसीसे बातचीत न कर सकती थी। आंखें अपने आप झपक जाती थीं। किसीके सामने जाते शरम आती, स्त्रियोंतकके सामने बिना घूंघटके झिझक होती थी। मैं कुछ हिन्दी पढ़ी हुई थी, पर उपन्यास नाटकादिके पढ़नेमें आनन्द न आता था। फुर्सत मिलनेपर रामायण पढ़ती। उसमें मेरा मन बहुत लगता था। मैं उसे मनुष्यकृत नहीं समझती थी। मुझे पूरा-पूरा विश्वास था कि उसे किसी देवताने स्वयं रचा होगा। मैं मनुष्योंको इतना उच्च, तथा विचारवान न समझती थी। मैं दिन भर घरका कोई-न-कोई काम करती रहती और कोई काम न रहता तो चर्खेपर सूत कातती थी। अपनी बूढ़ी साससे थरथर कांपती थी। एक दिन दालमें नमक अधिक हो गया, ससुरजीने भोजनके समय सिर्फ

इतना ही कहा, 'नमक ज़रा अन्दाजसे डाला करो" इतना सुनते ही हृदय कांपने लगा। मानों मुझे इससे अधिक कोई वेदना नहीं पहुंचायी जा सकती थी।

लेकिन मेरा यह फूहरपन मेरे बाबूजी (पतिदेव) को पसन्द न आता था। वह वकील थे। उन्होंने शिक्षाकी ऊंची-से-ऊंची डिगरियां पाई थीं। वह मुझपर प्रेम अवश्य करते थे, पर उस प्रेममें दयाकी मात्रा अधिक होती थी। स्त्रियोंके रहन-सहन और शिक्षाके सम्बन्धमें उनके विचार बहुत ही उदार थे। वह मुझे उन विचारोंसे बहुत ही नीचे देखकर कदाचित् मन-ही-मन खिन्न होते थे; परन्तु उसमें मेरा कोई अपराध न देखकर वह रीति-रवाज-पर झुंझलाते थे! उन्हें मेरे साथ बैठकर बातचीत करनेमें जरा भी आनन्द न आता था। सोने आते तो कोई-न-कोई अंग्रेजी पुस्तक साथ लाते और नींद न आनेतक पढ़ा करते। जो कभी मैं पूछ बैठती कि क्या पढ़ते हो, तो मेरी ओर करुण दृष्टिसे देखकर उत्तर देते, तुम्हें क्या बतलाऊं, यह आसकर बाइलडकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। मैं अपनी योग्यतापर लज्जित थी। मनमें आता मैं ऐसे उच्च विचार पुरुषके योग्य नहीं हूं। मुझे तो किसी उजड्डके घर पड़ना था। बाबूजी मुझे निरादरकी दृष्टिसे नहीं देखते थे, यही मेरे लिये सौभाग्यकी बात थी।

एक दिन सन्ध्या समय मैं रामायण पढ़ रही थी। भरतजी रामचन्द्रजीकी खोजमें निकले थे। उनका करुण-विलाप तथा वार्तालाप पढ़कर मेरा हृदय गद्गद हो रहा था। नेत्रोंसे अश्रुधारा

बह रही थी, हृदय उमड़ा आता था कि इतनेमें बाबूजी कमरेमें आये और मैंने पुस्तक तुरन्त बन्द कर दी। उनके सामने मैं अपने फूहरपनको भरसक प्रकट न होने देती। लेकिन उन्होंने पुस्तक देख ली, पूछा, रामायण है न ?

मैंने अपराधियोंकी भांति देखते हुए कहा, हां, जरा देख रही थी।

बाबूजी—इसमें शक नहीं कि पुस्तक बहुत ही अच्छी है, भावोंसे भरी हुई है, लेकिन इसमें मानव-चरित्रको वैसी खूबीसे नहीं दिखाया गया है, जैसा अंग्रेज या फ्रान्सीसी लेखक दिखलाते हैं। तुम्हारी समझमें तो न आयगा लेकिन कहनेमें क्या हर्ज है, यूरोपमें आजकल "स्वाभाविकता" (Realism) का जमाना है। वे लोग मनोभावोंके उत्थान और पतनका ऐसा वास्तविक वर्णन करते हैं कि पढ़कर आश्चर्य होता है। हमारे यहां कवियोंको पग-पगपर धर्म तथा नीतिका ध्यान रखना पड़ता है इसलिये कभी-कभी उनके भावोंमें अस्वाभाविकता आ जाती है और यही त्रुटि तुलसीदासजीमें भी है।

मेरी समझमें उस समय कुछ भी न आया; बोली, मेरे लिये यही बहुत है, अंग्रेजी पुस्तकें कैसे समझूं ?

बाबूजी—कोई कठिन बात नहीं है। एक घण्टा भी रोज पढ़ो तो थोड़े समयमें यथेष्ट योग्यता प्राप्त कर सकती हो, पर तुमने तो मानो मेरी बातें न माननेकी सौगन्ध ही खा ली है। तुम्हें कितना समझाया कि मुझसे शरम करनेकी आवश्यकता नहीं,

पर तुम्हारे ऊपर कुछ प्रभाव न पड़ा। कितना कहता हूं कि जरा स्वच्छ-साफ रहा करो, परमात्मा सुन्दरता देता है तो चाहता है कि उसका शृङ्गार भी होता रहे, लेकिन जान पड़ता है कि तुम्हारी दृष्टिसे उसकी कुछ भी मर्यादा नहीं है या शायद तुम समझती हो कि मेरे ऐसे कुरूप मनुष्यके लिये तुम चाहे जैसा भी रहो आवश्यकतासे अधिक अच्छी हो। मानो यह अत्याचार मेरे ऊपर है। तुम मुझे ठोंक पीटकर वैराग्य सीखाना चाहती हो। जब मैं दिन-रात मेहनत करके कमाता हूं तो स्वभावतः मेरी इच्छा होती है कि उस द्रव्यका सबसे उत्तम व्यय हो, परन्तु तुम्हारा फूहरपन और पुराने विचार मेरे सारे परिश्रमपर पानी फेर देते हैं। स्त्रियां केवल भोजन बनाने, बच्चे पालने, पतिसेवा करने और एकादशी-व्रत रखनेके लिये नहीं हैं, उनके जीवनका लक्ष्य इससे बहुत ऊंचा है। वह मनुष्योंके समस्त सामाजिक और मानसिक विषयोंमें समान रूपसे भाग लेनेकी अधिकारिणी हैं। उन्हें मनुष्योंकी भांति स्वतन्त्र रहनेका भी अधिकार प्राप्त है। मुझे तुम्हारी यह बन्दी दशा देखकर बड़ा कष्ट होता है। स्त्री, पुरुषकी अर्धाङ्गिनी मानी गयी है। लेकिन तुम मेरी मानसिक या सामाजिक, किसी आवश्यकताको पूरा नहीं कर सकती हो। मेरा और तुम्हारा धर्म अलग, आचार-विचार अलग, आमोद-प्रमोदके विषय अलग। जीवनके किसी कार्य्यमें मुझे तुमसे किसी प्रकारकी भी सहायता नहीं मिल सकती। तुम स्वयं विचार कर सकती हो कि ऐसी दशामें मेरी जिन्दगी कैसी बुरी तरह कट रही है।

बाबूजीका कहना बिलकुल यथार्थ था। मैं उनके गलेमें एक जंजीरकी भांति पड़ी हुई थी। उस दिनसे मैंने उन्हींके कहे अनुसार चलनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली। अपने देवताको किस भांति अप्रसन्न करती?

२

यह मैं कैसे कहूं कि मुझे पहनने-ओढ़नेसे प्रेम था ही नहीं। था और उतना ही था जितना दूसरी स्त्रियोंको होता है। जब बालक और युवापुरुषतक शृङ्गार पसन्द करते हैं तो मैं तो स्त्री ठहरी। मन भीतर-ही-भीतर मचलकर रहता था। दूसरे मेरे मायकेमें मोटा खाने मोटा पहननेकी चाल थी। मेरी मां और दादी हाथोंसे सूत काततीं और जुलाहेसे उसीके कपड़े बुनवा लिये जाते। बाहरसे बहुत कम कपड़े आते थे। मैं कभी जरा महीन कपड़ा बनवाना चाहती और शृङ्गारकी ओर रुचि दिखाती तो वे फौरन टोकतीं और समझातीं कि साज सामान भले घरकी लड़कियोंको शोभा नहीं देते। ऐसी आदत अच्छी नहीं। यदि कभी मुझे दर्पणके सामने देख लेतीं तो झिड़कने लगतीं। परन्तु अब बाबूजीकी जिदसे मेरी यह झिझक जाती रही। मेरी सास और ननदें मेरी बनाव-शृङ्गारपर नाक-भौं सिकोड़तीं, पर मुझे अब उनकी परवा न थी। बाबूजीकी प्रेम-परिपूर्ण दृष्टिके लिये मैं झिड़कियां भी सह सकती थी। अब उनके और मेरे विचारोंमें समानता आती जाती थी, वह अधिक प्रसन्न-चित्त जान पड़ते थे। वह मेरे लिये फैशनेबुल साड़ियां, सुन्दर जाकटें, गाउन, चम-

कते हुए जूते और कामदार स्लीपर लाया करते, पर मैं इन वस्तुओंको धारणकर किसीके सामने न निकलती, ये वस्त्र केवल बाबूजीके ही सामने पहननेके लिये रखे थे। मुझे इस प्रकार बनी-ठनी देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती थी। स्त्री अपने पतिकी प्रसन्नताके लिये क्या नहीं कर सकती? अब घरके काम-काजमें मेरा जी न लगता। मेरा कुछ समय तो बनाव-शृङ्गार तथा पुस्तकावलोकनमें ही बीतने लगा। पुस्तकोंसे मुझे प्रेम होने लगा था।

यद्यपि अभीतक मैं अपने सास-ससुरका लिहाज करती थी, उनके सामने बूट और गाउन पहनकर निकलनेका साहस न होता था, पर मुझे उनकी अभिमानपूर्ण बातें न भाती थीं। मैं सोचती जब मेरा पति सैकड़ों रुपये महीना कमाता है तो घरमें मैं चेरी बनकर क्यों रहूं? यों अपनी इच्छासे चाहे जितना काम करूं। वह मुझे आज्ञा देनेवाले कौन होते हैं? मुझमें आत्माभिमानकी मात्रा बढ़ने लगी। यदि अम्मां मुझे कोई काम करनेको कहतीं तो मैं अदबदाके उसे टाल जाती। एक दिन उन्होंने कहा, सवेरेके जलपानके लिये कुछ दालमोठ बना लो। मैं बात अनसुनी कर गयी। अम्मांने कुछ देरतक मेरी बाट देखी, पर जब मैं अपने कमरेसे न निकली तो उन्हें गुस्सा चढ़ आया। वह बड़ी ही चिड़चिड़ी प्रकृतिकी थीं। तनिक-सी बातपर तिनक जाती थीं। उन्हें अपनी प्रतिष्ठाका इतना अभिमान था कि मुझे बिलकुल लौंडी ही समझती थीं। लेकिन अपनी पुत्रियोंसे सदैव नम्रतासे पेश आतीं। बल्कि मैं तो यह कहूंगी कि उन्हें सिर चढ़ा रखा

था। वह क्रोधमें भरी हुई मेरे कमरेके द्वारपर आकर बोलीं, तुमसे मैंने दालमोठ बनानेको कहा था, बनाया? मैं कुछ रुष्ट होकर बोली, अभी फुर्सत नहीं मिली।

अम्मां—तो तुम्हारी जानमें दिनभर पड़े रहना ही बड़ा काम है यह आजकल तुम्हें क्या हो गया है? किस घमण्डमें हो? क्या यह सोचती हो कि मेरा पति कमाता है, तो मैं काम क्यों करूं? इस घमण्डमें न भूलना। तुम्हारा पति लाख कमाये, लेकिन घरमें राज मेरा ही रहेगा। आज वह चार पैसे कमाने लगा है तो तुम्हें मालकिन बननेकी हवस हो रही है। लेकिन उसे पालने पोसने तुम नहीं आई थी, मैंने ही उसे पढ़ा लिखाकर इस योग्य बनाया है। वाह! कलकी छोकड़ी और अभीसे यह गुमान?

मैं रोने लगी। मुंहसे एक बात न निकली। बाबूजी उस समय ऊपर कमरेमें बैठे कुछ पढ़ रहे थे। यह बातें उन्होंने सुनी, उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। रातको जब वह घरमें आये तो बोले, देखा तुमने आज अम्मांका क्रोध! यही अत्याचार है जिनसे स्त्रियोंको अपनी जिन्दगी पहाड़ मालूम होने लगती है। इन बातोंसे हृदयमें कितनी वेदना होती है, इसका जानना असम्भव है। जीवन भार हो जाता है, हृदय जर्जर हो जाता है, और मनुष्यकी शिक्षोन्नति उसी प्रकार रुक जाती है जैसे जल, धूप और वायुके बिना पौदे सूख जाते हैं। हमारे घरोंमें यह बड़ा अन्धेर है। अब मैं तो उनका पुत्र ही ठहरा, उनके सामने मुंह नहीं खोल सकता। मेरे ऊपर उनका बहुत बड़ा अधिकार है। अतएव उनके विरुद्ध

एक शब्द भी कहना मेरे लिये लज्जाका विषय होगा और यही बन्धन तुम्हारे लिये भी है। यदि तुमने उनकी बातें चुपचाप न सुन ली होतीं तो मुझे बहुत ही दुःख होता। कदाचित् मैं विष खा लेता। ऐसी दशामें दो ही बातें सम्भव हैं या तो सदैव उनकी घुड़कियों झिड़कियोंको सहे जाओ या अपने लिये कोई दूसरा रास्ता ढूंढ़ो। अब इस बातकी आशा करना कि अम्मांके स्वभाव में कोई परिवर्तन हो; बिल्कुल असम्भव है। बोलो, तुम्हें क्या स्वीकार है?

मैंने डरते-डरते कहा, आपकी जो आज्ञा हो वह करूं। अब कभी न पढ़ूं लिखूंगी। जो कुछ वह कहेंगी, वही करूंगी। यदि वह इसीमें प्रसन्न हैं तो यही सही, मुझे पढ़-लिखकर क्या करना है?

बाबूजी—पर मैं यह नहीं चाहता। अम्मांने आज आरम्भ किया है। अब रोज बढ़ती ही जायंगी। मैं तुम्हें जितना ही सभ्य तथा विचारशील बनानेकी चेष्टा करूंगा, उतना ही उन्हें बुरा लगेगा और उनका गुस्सा तुमपर निकलेगा। उन्हें पता नहीं कि जिस आब-हवामें उन्होंने अपनी जिन्दगी बिताई है वह अब नहीं रही। विचार स्वातन्त्र्य और समयानुकूल उनकी दृष्टिमें अधर्मसे कम नहीं। मैंने यह उपाय सोचा है कि किसी दूसरे शहरमें चलकर अपना अड्डा जमाऊं। मेरी वकालत भी यहाँ नहीं चलती। इसलिये किसी बहानेकी भी आवश्यकता न पड़ेगी।

मैं इस तजवीजके विरुद्ध कुछ न बोली। यद्यपि मुझे अकेले

रहनेसे भय लगता था, तथापि वहां स्वतंत्र रहनेकी आशाने मनको प्रफुल्लित कर दिया।

३

इसी दिनसे अम्मांने मुझसे बोलना छोड़ दिया। महरियों, पड़ोसिनों और ननदोंमें मेरा परिहास किया करतीं। यह मुझे बहुत दुखदायी होता था। इसके बदले यदि वह मुझे कुछ भली-बुरी बातें कह लेतीं तो मुझे स्वीकार था। मेरे हृदयसे उनकी मानमर्यादा घटने लगी। किसी मनुष्यपर इस प्रकार कटाक्ष करना उसके हृदयसे अपने आदरको मिटानेके समान है। मेरे ऊपर सबसे गुरुतर दोषारोपण यह था कि मैंने बाबूजीपर कोई मोहनमंत्र फूंक दिया है, वह मेरे इशारोंपर चलते हैं। और यथार्थमें बात उल्टी थी।

भाद्र मास था। जन्माष्टमीका त्योहार आया। घरमें सब लोगोंने व्रत रखा। मैंने भी सदैवकी भांति व्रत रखा। ठाकुरजीका जन्म रातको बारह बजे होनेवाला था, हम सब बैठी गाती-बजाती थीं। बाबूजी इन असभ्य व्यवहारोंके बिलकुल विरुद्ध थे। वह होलीके दिन रंग भी न खेलते, गाने-बजानेकी तो बात ही अलग। रातको एक बजे जब मैं उनके कमरेमें गई तो मुझे समझाने लगे, इस प्रकार शरीरको कष्ट देनेसे क्या लाभ? कृष्ण महापुरुष अवश्य थे और उनकी पूजा करना हमारा कर्त्तव्य है, पर इस गाने-बजानेसे क्या फायदा? इस ढोंगका नाम धर्म नहीं है! धर्मका सम्बन्ध सचाई और ईमानसे है, दिखावेसे नहीं।

बाबूजी स्वयं इसी मार्गका अनुसरण करते थे। वह भगवद्-गीताकी अत्यन्त प्रशंसा करते और मानते थे, पर उसका पाठ कभी न करते। उपनिषदोंकी प्रशंसामें उनके मुखसे मानों पुष्प-वृष्टि होने लगती, पर मैंने उन्हें कोई उपनिषद् पढ़ते नहीं देखा। वह हिन्दू-धर्मके गूढ़ तत्वज्ञानपर लट्टू थे, पर इसे समयानुकूल न समझते थे। विशेषकर वेदान्तको तो भारतकी अवनतिका मूल कारण समझते थे। वह कहा करते कि इसी वेदान्तने हमको चौपट कर दिया, हम दुनियांके पदार्थोंको तुच्छ समझने लगे। जिसका फल अबतक भुगत रहे हैं। अब उन्नतिका समय है। चुपचाप बैठे रहनेसे निर्वाह नहीं, सन्तोषने ही भारतको गारत कर दिया।

उस समय उनका उत्तर देनेकी शक्ति मुझमें कहां थी? हां, अब जान पड़ता है कि वह यूरोपीय सभ्यताके चक्करमें पड़े हुए थे। अब वह स्वयं ऐसी बातें नहीं करते, वह जोश अब ठंढा हो चला है।

४

इसके कुछ दिन बाद हम इलाहाबाद चले आये, बाबूजीने पहलेसे ही एक दो मंजिला मकान ले रखा था। जो सब तरहसे सजा सजाया था। हमारे यहां पांच नौकर थे। दो स्त्रियां, दो पुरुष और एक महाराज। अब मैं घरके कुल काम-काजसे छुट्टी पा गई। कभी जी घबराता तो कोई उपन्यास लेकर पढ़ने लगती।

यहां फूल और पीतलके बर्त्तन बहुत कम थे। चीनीकी रिकाबियां और प्याले आलमारियोंमें सुसज्जित थे। भोजन मेजपर आता था। बाबूजी बड़े चावसे भोजन करते। मुझे पहले कुछ शरम आती थी, लेकिन धीरे-धीरे मैं भी मेज हीपर भोजन करने लगी। हमारे पास एक सुन्दर टमटम भी थी। अब हम पैदल बिलकुल न चलते। किसीसे मिलने दस पग भी जाना होता तो गाड़ी तैयार करायी जाती। बाबूजी कहते, "यही फैशन है।"

बाबूजीकी आमदनी अभी बहुत कम थी। भलीभांति खर्च भी न चलता। कभी-कभी मैं उनको चिन्ताकुल देखती तो समझाती कि जब आय इतनी कम है तो व्यय इतना क्यों बढ़ा रखा है? कोई छोटा-सा मकान ले लो, दो नौकरोंसे भी काम चल सकता है? लेकिन बाबूजी मेरी बातोंपर हँस देते और कहते मैं अपनी दरिद्रताका ढिंढोरा अपने आप क्यों पीटूं? दरिद्रता प्रकट करना दरिद्र होनेसे अधिक दुःखदायी होता है। भूल जाओ कि हमलोग निर्धन हैं, फिर लक्ष्मी हमारे पास आप दौड़ी आयेंगी। खर्च बढ़ना, आवश्यकताओंका अधिक होना ही द्रव्योपार्जनकी पहली सीढ़ी है। इससे हमारी गुप्त शक्तियां विकसित हो जाती हैं और हम उन कष्टोंको झेलते हुए आगे पग धरनेके योग्य होते हैं। सन्तोष दरिद्रताका दूसरा नाम है।

अस्तु। हम लोगोंका खर्च दिन-दिन बढ़ता ही जाता था। हम लोग सप्ताहमें तीन बार थियेटर जरूर देखने जाते। सप्ताहमें एक बार मित्रोंको भोज अवश्य ही दिया जाता। अब मुझे सूझने लगा

कि जीवनका लक्ष्य सुख-भोग ही है। ईश्वरको हमारी और उपासनाकी इच्छा नहीं है। उसने हमको उत्तम-उत्तम वस्तुएं भोगने के लिये ही दी हैं। यही उसकी सर्वोत्तम आराधना है। एक ईसाई लेडी मुझे पढ़ाने तथा गाना सिखाने आने लगी। घरमें एक पियानो भी आ गया। इन्हीं आनन्दोंमें फँसकर मैं रामायण और भक्तमालको भूल गयी। वे पुस्तकें मुझे अप्रिय होने लगीं! देवताओंपरसे भी विश्वास उठ गया।

धीरे-धीरे यहांके बड़े लोगोंसे स्नेह और सम्बन्ध बढ़ने लगा। यह बिलकुल नयी सोसाइटी थी। इसका रहन-सहन, आहार-व्यवहार और विचार मेरे लिये सर्वथा अनोखे थे। मैं इससे सोसाइटीमें ऐसी जान पड़ती जैसे मोरोंमें कौआ। इन लेडियोंकी बातचीत कभी थियेटर और घुड़दौड़के विषयपर होती, कभी टेनिस, समाचारपत्रों और अच्छे-अच्छे लेखकोंके लेखोंपर। उनकी चातुर्य्य, बुद्धिकी तीव्रता, उनकी फुरती और चपलतापर मुझे अचम्भा होता। ऐसा मालूम होता कि वे ज्ञान और प्रकाशकी पुतलियां ही हैं। वे बिना घूंघट बाहर निकलतीं। मैं उनके साहसपर चकित रह जाती। वे मुझे भी कभी-कभी अपने साथ ले जानेकी चेष्टा करतीं, लेकिन मैं लज्जावश न जा सकती। मैं उन लेडियोंको कभी उदास या चिन्तित न पाती। मिस्टर दास बहुत बीमार थे, परन्तु मिसेज दासके माथेपर चिन्ताका चिह्नतक न था। मिस्टर बागड़ी नैनीतालमें तपेदिकका इलाज करा रहे थे, पर मिसेज बागड़ी नित्य टेनिस खेलने जाती थीं। इस अवस्थामें मेरी क्या दशा होती, यह मैं ही जानती हूं।

इन लेडियोंकी रीति-नीतिमें एक आकर्षण शक्ति थी जो मुझे खींचे लिये जाती थी। मैं उन्हें सदैव आमोदप्रमोदके लिये उत्सुक देखती और मेरा भी जी चाहता कि उन्हींकी भांति मैं भी निस्संकोच हो जाती। उनका अङ्गरेजी वार्तालाप सुनकर मुझे मालूम होता कि वे देवियां हैं· मैं अपनी इन त्रुटियोंकी पूर्तिके लिये प्रयत्न किया करती थी।

इसी बीचमें मुझे एक खेदजनक अनुभव होने लगा। यद्यपि बाबूजी पहलेसे मेरा अधिक आदर करते थे, मुझे सदैव "डियर" "डार्लिङ्ग" कहकर सम्बोधन करते, तथापि मुझे उनकी बातोंमें एक प्रकारकी बनावट मालूम होती थी। ऐसा प्रतीत होता मानों बातें हृदयसे नहीं केवल मुखसे निकलती हैं, उनके स्नेह और प्यारमें हार्दिक भावोंकी जगह अलंकार ज्यादा होता था। किन्तु और भी अचम्भेकी बात तो यह थी कि अब मुझे भी बाबूजीपर वह पहलेकी-सी श्रद्धा न रही थी। अब उनकी शिर पीड़ासे मुझे हृदयपीड़ा न होती थी। मुझमें आत्मगौरवका आविर्भाव होने लगा था। अब मैं अपना बनाव-शृङ्गार इसलिये करती थी कि संसारमें यह भी मेरा एक कर्त्तव्य है, इसलिये नहीं कि मैं किसी एक पुरुषकी व्रतधारिणी हूं। अब मुझे भी अपनी सुन्दरतापर गर्व होने लगा था। मैं अब किसी दूसरेके लिये न जीती थी; अपने लिये जीती थी। त्याग तथा सेवाका भाव मेरे हृदयसे लुप्त होने लगा था।

मैं अब भी परदा करती थी परन्तु हृदय अपनी सुन्दरताकी

सराहना सुननेके लिये व्याकुल रहता था। एक दिन मिस्टर दास तथा और भी अनेक सभ्यगण बाबूजीके साथ बैठे हुए थे। मेरे और उनके बीचमें केवल एक परदेकी आड़ थी। बाबूजी मेरी इस झिझकसे बहुत ही लज्जित थे। इसे वह अपनी सभ्यतामें काला धब्बा समझते थे। कदाचित् वह दिखाना चाहते थे कि मेरी स्त्री इसलिये परदेमें नहीं है कि वह रूप तथा वस्त्र आभूषणोंमें किसीसे कम है, बल्कि इसीलिये है कि अभी उसे लज्जा आ जाती है। मुझे किसी बहानेसे बारम्बार पर्देके निकट बुलाते जिसमें उनके मित्र मेरी सुन्दरता और मेरे वस्त्राभूषण देख लें। अन्तमें कुछ दिन बाद ऐसा ही हुआ। इलाहाबाद आनेके पूरे दो वर्ष बाद मैं बाबूजीके साथ बिना पर्देके सैर करने लगी। सैरके बाद टेनिसकी नौबत पहुंची। अन्तको मैंने क्लबमें जाकर दम लिया। पहले यह टेनिस और क्लब मुझे तमाशा-सा मालूम होता था मानों वे लोग व्यायामके लिये नहीं, बल्कि फैशनके लिये टेनिस खेलने आते थे। वह कभी न भूलते थे कि हम टेनिस खेल रहे हैं। उनके प्रत्येक काममें, झुकनेमें, दौड़नेमें, उचकनेमें एक कृत्रिमता थी जिससे यह प्रतीत होता था कि इस खेलका प्रयोजन कसरत नहीं, केवल दिखाव है।

क्लबमें इससे भी विचित्र अवस्था थी। वह पूरा स्वांग था, भद्दा और बेजोड़। लोग अङ्गरेजीके कुछ चुने हुए शब्दोंका प्रयोग करते थे जिनमें कोई सार न होता था, नकली हँसी हँसते थे जिसका कोई अवसर न होता था। स्त्रियोंकी यह फूहर निर्लज्जता

और पुरुषोंको वह भावशून्य नारी-श्रद्धा मुझे तनिक भी न भाती थी। चारों ओर अङ्गरेजी चाल-ढालकी एक हास्यजनक नकल थी। परन्तु क्रमशः मैं भी वही रंग पकड़ने लगी और उन्हींका अनुकरण करने लगी। अब मुझे अनुभव हुआ कि इस प्रदर्शन-लोलुपतामें कितनी शक्ति है। मैं अब नित्य नये शृंगार करती, नित्य नया रूप धरती। केवल इसलिये कि क्लबमें मैं सबकी दृष्टिकी लक्ष्य बन जाऊं। अब मुझे बाबूजीकी सेवा-सत्कारसे अधिक अपने बनाव-शृंगारकी धुन रहती थी। यहांतक कि यह शौक एक नशा-सा बन गया। इतना ही नहीं, बल्कि लोगोंसे अपनी सौंदय प्रशंसा सुनकर मुझे एक अभिमान मिश्रित आनन्द-का अनुभव होने लगा। मेरी लज्जाशीलताकी सीमायें विस्तृत हो गईं। वह दृष्टपात जो कभी मेरे शरीरके प्रत्येक रोयंको खड़ा कर देता, और हास्यकटाक्ष जो कभी मुझे विष खा लेनेको प्रस्तुत कर देता उनसे अब मुझे एक उन्मादपूर्ण हर्ष होता था। परन्तु जब कभी मैं अपनी अवस्थापर आन्तरिक दृष्टि डालती तो मुझे बड़ी घबराहट होती। यह नाव किस घाट लगेगी? कभी-कभी इरादा करती कि क्लब न जाऊंगी, परन्तु समय आते ही फिर तैयार हो जाती थी। मैं अपने वशमें न थी। सद्कल्पनायें निर्बल हो गयी थीं।

बाबूजीके स्वभावमें एक और परिवर्तन होने लगा। वह उदास और चिन्तित रहने लगे। मुझसे बहुत कम बोलते। ऐसा जान पड़ता कि इन्हें कठिन चिन्ताने घेर रक्खा है या कोई बीमारी हो

गई है। मुंह बिलकुल सूखा रहता, तनिक-तनिक-सी बातपर नौकरोंसे झल्लाने लगते और बाहर बहुत कम जाते।

अभी एक ही मास पहले, वह सौ काम छोड़कर क्लब अवश्य जाते थे, वहां गये बिना उन्हें कल न पड़ती थी, पर अब अधिकतर वह अपने कमरेमें आराम कुर्सीपर लेटे हुए समाचार-पत्र और पुस्तकें देखा करते। मेरी समझमें न आता कि बात क्या है?

एक दिन उन्हें बड़े जोरका बुखार आया, दिनभर बेहोश पड़े रहे। परन्तु मुझे उनके पास बैठनेमें अनकुस-सा लगता था। मेरा जी एक उपन्यासमें लगा हुआ था; उनके पास जाती और पलभरमें फिर लौट आती। टेनिसका समय आया तो मैं द्विविधामें पड़ी कि जाऊं या न जाऊं, देरतक चित्तमें यह संग्राम होता रहा। अन्तमें मैंने निर्णय किया कि मेरे यहां रहनेसे यह कुछ अच्छे तो हो नहीं जायंगे, इससे यहां बैठा रहना बिलकुल निरर्थक है। मैंने बढ़िया वस्त्र पहने और रैकेट लेकर क्लबघर जा पहुंची। वहां मैंने मिसेज दास और मिसेज बागड़ीसे बाबूजीकी दशा बतलाई और सजल नेत्र चुपचाप बैठी रही। जब सब लोग कोर्टमें जाने लगे और मिस्टर दासने मुझसे चलनेको कहा तो मैं एक ठंढी आह भरकर कोर्टमें जा पहुंची और खेलने लगी।

आजसे तीन वर्ष पूर्व बाबूजीको इसी प्रकार बुखार आ गया था, मैं रातभर उन्हें पंखा झलती रही। हृदय व्याकुल था और यही जी चाहता था कि इनके बदले मुझे बुखार आ जाय, परन्तु यह उठ बैठें! पर अब हृदय तो स्नेहशून्य हो गया था। दिखाव

अधिक था। अकेले रोनेकी मुझमें क्षमता न रह गयी थी। मैं सदैवकी भांति रातको नौ बजे लौटी। बाबूजीका जी कुछ अच्छा जान पड़ा। उन्होंने केवल मुझे दबी दृष्टिसे देखा और करवट बदल ली। परन्तु मैं लेटी तो मेरा ही हृदय मुझे अपनी स्वार्थ-परता और प्रमोदासक्तिपर धिक्कारता रहा।

मैं अब अंग्रेजी उपन्यासोंको समझने लगी थी। हमारी बात-चीत अधिक उत्कृष्ट और समालोचनात्मक होती थी।

हमारी सभ्यताका आदर्श अब बहुत उच्च हो गया था। हमको अब अपनी मित्र मंडलीसे बाहर दूसरोंसे मिलने-जुलनेमें संकोच होता था। अब हम अपनेसे लघुश्रेणीके लोगोंसे बोलनेमें अपना अपमान समझते थे। नौकरोंको अपना नौकर समझते थे और बस, हमको उनके निजी मुआमिलोंसे कुछ मतलब नहीं था, हम उनसे पृथक रहकर अपना रोब उनके ऊपर जमाये रखना चाहते थे। हमारी इच्छा यह थी कि वह हम लोगोंको साहब समझें। हिन्दुस्तानी स्त्रियोंको देखकर मुझे उनसे घृणा होती थी। उनमें शिष्टता न थी। खैर!

बाबूजीका जी दूसरे दिन भी न संभला। मैं क्लब न गयी। परन्तु जब लगातार तीन दिनतक उन्हें बुखार आता गया और मिसेज दासने बार-बार एक नर्स बुलानेका आदेश किया तो मैं सहमत हो गयी। उस दिनसे रोगीकी सेवा-शुश्रूषासे छुट्टी पाकर बड़ा हर्ष हुआ। यद्यपि दो दिन मैं क्लब न गयी थी परन्तु मेरा

जी वहीं लगा रहता था बल्कि अपने भीरुतापूर्ण त्यागपर क्रोध आता था।

एक दिन तीसरे पहर मैं कुर्सीपर लेटी हुई एक अंग्रेजी पुस्तक पढ़ रही थी। अचानक मनमें यह विचार उठा कि बाबूजीका बुखार असाध्य हो जाता तो ? परन्तु इस विचारसे मुझे लेशमात्र भी दुःख नहीं हुआ। मैं इस शोकमय कल्पनासे मन-ही-मन आनन्द उठाने लगी। मिसेज दास, मिसेज नायडू, मिसेज श्रीवास्तव, मिस खरे, मिसेज सरगा अवश्य ही मेरे दुःखमें सम्मिलित होंगी। उन्हें देखते ही मैं सजल-नेत्रोंसे उठूंगी और कहूंगी, बहनो! मैं लुट गई हां मैं लुट गई !! अब मेरा जीवन अन्धेरी रातके भयावह वन या श्मशानके दीपकके समान है परन्तु मेरी अवस्थापर दुःख न प्रकट करो। मुझपर जो पड़ेगी उसे मैं महान आत्माके मोक्षके विचारसे सहन कर लूंगी।

मैंने इस प्रकार मनमें एक शोकपूर्ण व्याख्यान की रचना कर डाली। यहाँतक कि मैंने अपने उस वस्त्रके विषयमें भी निश्चय कर लिया जो मृतकके साथ श्मशान जाते समय पहनूंगी।

इस घटनाकी शहर भरमें चर्चा हो जायगी। सारे कंटून्मेंटके लोग मुझे समवेदनाके पत्र भेजेंगे। तब मैं उनका उत्तर समाचार पत्रोंमें प्रकाशित करा दूंगी कि मैं प्रत्येक शोकपत्रके उत्तर देनेमें असमर्थ हूं। हृदयके टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं, उसे रोनेके सिवा और किसी कामके लिये समय नहीं है। मैं इसके लिये उन लोगों की कृतज्ञ हूं और उनसे नियमपूर्वक निवेदन करती हूं कि वे

मृतककी आत्माकी सद्गतिके निमित्त ईश्वरसे प्रार्थना करें।

मैं इन्हीं विचारोंमें डूबी हुई थी कि नर्सने आकर कहा कि आपको साहब याद करते हैं। यह मेरे क्लब जानेका समय था। मुझे उनका बुलाना अखर गया, लेकिन क्या करती, किसी तरह उनके पास गयी। बाबूजीको बीमार हुए लगभग एक मास हो गया था, वह अत्यन्त दुबेल हो रहे थे। उन्होंने मेरी ओर विनय पूर्ण दृष्टिसे देखा। उसमें आंसू भरे हुए थे। मुझे उनपर दया आयी। बैठ गयी और ढाढ़स देते हुए बोली, क्या करूं? कोई दूसरा डाक्टर बुलाऊं?

बाबूजी आंखें नीची करके अत्यन्त करुण भावसे बोले, मैं यहां कभी नहीं अच्छा हो सकता, मुझे अम्मांके पास पहुंचा दो।

मैंने कहा, क्या आप समझते हैं कि वहां आपकी चिकित्सा यहांसे अच्छी होगी?

बाबूजी बोले, क्या जानें क्यों मेरा जी अम्मांके दर्शनोंको लालायित हो रहा है? मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं वहां बिना दवा-दर्पनके अच्छा हो जाऊंगा।

मैं– यह आपका केवल विचारमात्र है।

बाबूजी—शायद ऐसा ही हो, लेकिन मेरी विनय स्वीकार करो। मैं इस रोगसे नहीं, इस जीवनसे दुखित हूं।

मैंने अचरजसे उनकी ओर देखा।

बाबूजी फिर बोले, हां मैं इस जिन्दगीसे तंग आ गया हूं।

मैं अब समझ रहा हूं कि मैं जिस स्वच्छ लहराते हुए निर्मल जल की ओर दौड़ा जा रहा था वह मरु भूमि है। मैं इस प्रकारके जीवनके बाहरी रूपपर लट्टू हो रहा था परन्तु अब मुझे उसकी आन्तरिक अवस्थाओंका बोध हो रहा है। इन दो वर्षोंमें मैंने इस उपवनमें खूब भ्रमण किया और उसे आदिसे अन्ततक कंटकमय पाया। यहां न तो हृदयकी शान्ति है और न आत्मिक आनन्द। यह एक उन्मत्त अशान्तिमय स्वार्थपूर्ण विलासयुक्त जीवन है। यहां न नीति है न धर्म,न सहानुभूति और न सहृदयता। परमात्माके लिये मुझे इस अग्निसे बचाओ। यदि और कोई उपाय न हो तो अम्मां को एक पत्र ही लिख दो। वह अवश्य यहां आयेंगी। अपने अभागे पुत्रका दुःख उनसे न देखा जायगा, उन्हें इस सोसाइटीकी हवा अभी नहीं लगी है, वह आयेंगी। उनकी वह ममतापूर्ण दृष्टि वह स्नेहपूर्ण शुश्रूषा मेरे लिये सौ औषधियोंका काम करेगी। उनके मुखपर वह ज्योति प्रकाशमान होगी जिसके लिये मेरे नेत्र तरस रहे हैं। उनके हृदयमें स्नेह है, सत्य है, विश्वास है, यदि उनकी गोदमें मैं मर जाऊं तो मेरी आत्माको शान्ति मिलेगी।

मैं समझी कि यह बुखारकी बकझक है। नर्ससे कहा, जरा इनका टेम्परेचर तो लो, मैं अभी डाक्टरके पास जाती हूं। मेरा हृदय एक अज्ञात भयसे कांपने लगा। नर्सने थरमामीटर निकाला परन्तु ज्योंही वह बाबूजीके समीप गयी, उन्होंने उसके हाथसे वह यन्त्र छीनकर पृथ्वीपर पटक दिया। उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये और मेरी ओर एक अवहेलनापूर्ण दृष्टिसे देखकर कहा, साफ-

साफ क्यों नहीं कहती हो कि मैं कलघर जाती हूं, जिसके लिये तुमने यह वस्त्र धारण किये हैं और यदि गाड़ीपर उधरसे घूमती हुई डाक्टरके पास जाओ तो उनसे कह देना कि यहां टेम्परेचर उस बिन्दुपर आ पहुंचा है जहां आग लग जाती है।

मैं और भी अधिक भयभीत हो गयी और हृदयमें एक करुण चिन्ताका संचार होने लगा। गला भर आया बाबूजीने नेत्र मूंद दिये थे और उनका सांस वेगसे चल रहा था। मैं द्वारकी ओर चली कि किसीको डाक्टरके पास भेजूं। यह फटकार सुनकर स्वयं कैसे जाती? इतनेमें बाबूजी उठ बैठे और विनयभावसे बोले, श्यामा! मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूं। बात दो सप्ताहसे मनमें थी, पर साहस न हुआ। आज मैंने निश्चय कर लिया है कि कह ही डालूं। मैं अब फिर अपने घर जाकर वही पहलेकी-सी जिन्दगी बिताना चाहता हूं। मुझे अब इस जीवनसे घृणा हो गयी है और यही मेरी बीमारीका मुख्य कारण है। मुझे शारीरिक नहीं, वरन मानसिक कष्ट है। मैं फिर तुम्हें वही पहले-सी सलज्ज, नीचा सर करके चलनेवाली, पूजा करनेवाली, रामायण पढ़नेवाली, घरका काम-काज करनेवाली, चरखा कातनेवाली, ईश्वरसे डरनेवाली, पतिश्रद्धासे परिपूर्ण स्त्री देखना चाहता हूं, मैं विश्वास करता हूं कि तुम मुझे निराश न करोगी। मैं तुमको सोलहो आना अपना बनाना चाहता हूं और सोलहो आना तुम्हारा बनना चाहता हूं। मैं अब समझ गया कि उसी सादे पवित्र जीवनमें वास्तविक सुख है। बोलो, स्वीकार है? तुमने

सदैव मेरी आज्ञाओंका पालन किया है, इस समय निराश न करना, नहीं तो इस कष्ट और शोकका न जाने कितना भयंकर परिणाम हो !

मैं सहसा कोई उत्तर न दे सकी। मनमें सोचने लगी इस स्वतन्त्र जीवनमें कितना सुख था। यह मजे वहां कहां ? क्या इतने दिन स्वतन्त्र पवनमें विचरण करनेके पश्चात् फिर उसी पिंजरेमें जाऊं ? वहीं लौंडी बनकर रहूं ? क्यों, इन्हींने मुझे वर्षों स्वतन्त्रताका पाठ पढ़ाया, वर्षों देवताओंकी, रामायणकी, पूजा-पाठकी, व्रत-उपवासकी बुराई की, हँसी उड़ाई और अब जब मैं उन बातोंको भूल गयी, उन्हें मिथ्या समझने लगी तो फिर मुझे उसी अन्धकूपमें ढकेलना चाहते हैं। मैं उन्हींकी इच्छानुसार चलती हूं फिर मेरा अपराध क्या है ? लेकिन बाबूजीके मुखपर एक ऐसी दीनतापूर्ण विवशता थी कि मैं प्रत्येक्ष अस्वीकार न कर सकी, बोली, आखिर आपको यहां क्या कष्ट है ?

मैं उनके विचारोंकी तहतक पहुंचना चाहती थी।

बाबूजी फिर उठ बैठे और मेरी ओर कठोर दृष्टिसे देखकर बोले, बहुत ही अच्छा होता कि तुम प्रश्नको मुझसे पूछनेके बदले अपने ही हृदयसे पूछ लेती। क्या अब मैं तुम्हारे लिये वही हूं जो आजसे तीन वर्ष पहले था ? जब मैं तुमसे अधिक शिक्षा प्राप्त, अधिक बुद्धिमान, अधिक जानकार होकर तुम्हारे लिये वह नहीं रहा जो पहले था—तुमने चाहे इसे अनुभव न किया हो परन्तु मैं स्वयं कर रहा हूं – तो मैं कैसे अनुमान करूं कि उन्हीं भावोंने

तुम्हें स्खलित न किया होगा ? नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष चिह्न देखते हैं कि तुम्हारे हृदयपर उन भावोंका और भी अधिक प्रभाव पड़ा है। तुमने अपनेको ऊपरी बनाव-चुनाव और विलासके भँवरमें डाल दिया है और तुम्हें उसकी लेशमात्र भी सुध नहीं है। अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि, सभ्यता, स्वेच्छाचारिताका भूत स्त्रियोंके कोमल हृदयपर बड़ी सुगमतासे कब्जा कर सकता है। क्या अबसे तीन वर्ष पूर्व भी तुम्हें यह साहस हो सकता था कि मुझे इस दशामें छोड़कर तुम किसी पड़ोसिनके यहां गाने-बजाने चली जाती ? मैं बिछौनेपर पड़ा रहता और तुम किसीके घर जाकर कलोलें करती, स्त्रियोंका हृदय आधिक्य प्रिय होता है। परन्तु इस नवीन आधिक्यके बदले मुझे वह पुराना आधिक्य कहीं ज्यादा पसन्द है। उस आधिक्यका फल आत्मिक और शारीरिक अभ्युदय और हृदयकी पवित्रता था। इस आधिक्यका परिणाम है छिछोरापन, निर्लज्जता, दिखाव और स्वेच्छाचार। उस समय यदि तुम इस प्रकार मिस्टर दासके सम्मुख हँसती या बोलती तो मैं या तो तुम्हें मार डालता या स्वयं विष पान कर लेता। परन्तु बेहयाई इस जीवनका प्रधान तत्व है, मैं सब कुछ स्वयं देखता हूं और सहता हूं और कदाचित् सहे जाता। यदि इस बीमारीने मुझे सचेत न कर दिया होता। अब यदि तुम यहां बैठो भी रही तो मुझे सन्तोष न होगा क्योंकि मुझे यह विचार दुःखित करता रहेगा कि तुम्हारा हृदय यहां नहीं है। मैंने अपने-को इस इन्द्रजालसे निकालनेका निश्चय कर लिया है, जहां धन-

का नाम मान है, इन्द्रिय लिप्साका सभ्यता और भ्रष्टताका विचारस्वातंत्र्य। बोलो, मेरा प्रस्ताव स्वीकार है?

मेरे हृदयपर वज्रपात-सा हो गया। बाबूजीका अभिप्राय पूर्णतया हृदयंगम हो गया। अभी हृदयमें कुछ पुरानी लज्जा बाकी थी। यह यन्त्रणा असह्य हो गयी। लज्जा पुनर्जीवित हो उठी, अन्तरात्माने कहा, अवश्य! मैं अब वह नहीं हूं जो पहले थी। उस समय मैं इनको अपना इष्टदेव मानती थी। इनकी आज्ञा शिरोधार्य थी। अब यह मेरी दृष्टिमें एक साधारण मनुष्य हैं, मिस्टर क्रासका चित्र मेरे नेत्रोंके सामने खिंच गया? कल मेरे हृदयपर इस दुरात्माकी बातोंका कैसा नशा छा गया था। यह सोचते ही नेत्र लज्जासे झुक गये। बाबूजीकी आन्तरिक अवस्था उनके मुखड़े हीसे प्रकाशमान हो रही थी। स्वार्थ और विलास-लिप्साके विचार मेरे हृदयसे दूर हो गये। उसके बदले यह शब्द ज्वलन्त अक्षरोंमें लिखे हुए नजर आए। "तूने फैशन और वस्त्राभूषणोंमें अवश्य उन्नति की है, तुझमें अपने स्वत्वोंका ज्ञान उदय हो गया है, तुझमें जीवनके सुख भोगनेकी योग्यता अधिक हो गयी है, तू अब अधिक गर्विणी, दृढ़ हृदय और शिक्षा सम्पन्ना हो गयी है, लेकिन तेरे आत्मिक बलका विनाश हो गया है। क्योंकि तू अपने कर्त्तव्यको भूल गयी है।"

मैं दोनों हाथ जोड़कर बाबूजीके चरणोंपर गिर पड़ी, कण्ठ-रूंध गया, एक शब्द भी मुंहसे न निकला, अश्रुधारा बह चली! अब मैं पुनः अपने घरपर आ गयी हूं। अम्मांजी अब मेरा अधिक

सम्मान करती हैं। बाबूजी अब संतुष्ट दीख पड़ते हैं। वह अब प्रति दिन सन्ध्या वन्दन करते हैं।

मिसेज दासके पत्र कभी कभी आते हैं वह इलाहाबादी सोसाइटीके नवीन समाचारोंसे भरे होते हैं, मिस्टर क्रास और मिस भाटियाके सम्बधमें कलुषित बातें उड़ रही हैं। मैं इन पत्रोंका उत्तर तो देती हूं परन्तु चाहती हूं कि वह अब न आते तो अच्छा होता।

कल बाबूजीने बहुत-सी पुरानी पोथियां अग्निदेवको अर्पण कीं, उनमें आसकर वाइल्डकी कई पुस्तकें थीं, वह अब अंग्रेजी पुस्तकें बहुत कम पढ़ते हैं। उन्हें कर्लाइल, रस्किन और एमसन-के सिवा और कोई पुस्तक पढ़ते मैं नहीं देखता। मुझे तो अपनी रामायण और महाभारतमें फिर वही आनन्द प्राप्त होने लगा है। चरखा अब पहलेसे अधिक चलाती हूं क्योंकि इस बीचमें चरखेने खूब प्रचार पा लिया है।

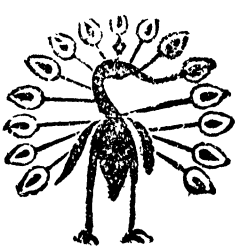

शंखनाद

१

भानु चौधरी अपने गांवके मुखिया थे। गांवमें उनका बड़ा मान था। दारोगाजी उन्हें टाट बिना ज़मीनपर न बैठने देते। मुखिया साहबकी ऐसी धाक बन्धी हुई थी कि उनकी मर्जी बिना गांवमें एक पत्ता भी नहीं हिल सकता था। कोई घटना, चाहे वह सास बहूका विवाद हो, चाहे मेंड़ या खेतका झगड़ा, चौधरी साहबके शासनाधिकारको पूर्णरूपसे सचेत करनेके लिये काफी थी। वह तुरन्त घटनास्थलपर जा पहुंचते, तहकीकात होने लगती, गवाह और सबूतके सिवा किसी अभियोगको सफलता सहित चलानेमें जिन बातोंको जरूरत होती है, उन सबपर विचार होता और चौधरीजीके दर्बारसे फैसला हो जाता। किसीको अदालत-तक जानेकी जरूरत न पड़ती। हां, इस कष्टके लिये चौधरी साहब कुछ फीस जरूर लेते थे। यदि किसी अवसरपर फीस मिलनेमें असुविधाके कारण उन्हें धीरजसे काम लेना पड़ता तो गांवमें आफ़त आ जाती थी। क्योंकि उनके धीरज और दारो-

गाजीके क्रोधमें कोई घनिष्ठ सम्बन्ध था। सारांश यह है कि चौधरीजीसे उनके दोस्त दुश्मन सभी चौकन्ने रहते थे।

२

चौधरी महाशयके तीन सुयोग्य पुत्र थे। बड़े लड़के बितान एक सुशिक्षित मनुष्य थे। डाकियेके रजिस्टरपर दस्तख़त कर लेते थे। बड़े अनुभवी, बड़े मर्मज्ञ, बड़े नीतिकुशल, मिर्ज़ईकी जगह कमीज़ पहनते, कभी कभी सिग्रेट भी पीते, जिससे उनका गौरव बढ़ता था। यद्यपि उनके ये दुर्व्यसन बूढ़े चौधरीको नाप-सन्द थे, पर बेचारे विवश थे क्योंकि अदालत और कानूनके मामिले बितानके हाथोंमें थे। वह कानूनका पुतला था। कानूनके दफ़े जबानपर रखे रहते थे। गवाह गढ़नेमें वह पूरा उस्ताद था। मझले लड़के शानचौधरी कृषिविभागके अधिकारी थे, बुद्धिके मन्द लेकिन शरीरसे बड़े परिश्रमी। जहां घास न जमती हो वहां केसर जमा दें। तीसरे लड़केका नाम गुमान था। यह बड़ा रसिक साथ ही उद्दण्ड था। मुहर्रममें ढोल इतने जोरोंसे बजाता कि कानके पर्दे फट जाते। मछली फंसानेका बड़ा शौकीन था। बड़ा रङ्गीला जवान था। खंजड़ी बजा बजाकर जब वह मीठे स्वर-से खियाल गाता तो रंग जम जाता। उसे दङ्गलका ऐसा शौक था कि कोसोंतक धावा मारता, पर घरवाले कुछ ऐसे शुष्क थे कि उसके इन व्यसनोंसे तनिक भी सहानुभूति न रखते थे। पिता और भाइयोंने तो उसे ऊसर खेत समझ रखा था। घुड़की धमकी, शिक्षा और उपदेश, स्नेह और विनय किसीका उसपर कुछ भी

असर न हुआ। हां, भावजें अभीतक उसकी ओरसे निराश न हुई थीं। वह अभीतक उसे कड़वी दवाइयां पिलाये जाती थीं। पर आलस्य वह राजरोग है जिसका रोगी कभी नहीं सम्भलता। ऐसा कोई बिरला ही दिन जाता होगा कि बांके गुमानको भावजोंके कटुवाक्य न सुनने पड़ते हों। यह विषैले शर कभी कभी उसके कठोर हृदयमें चुभ भी जाते, किन्तु यह घाव रातभरसे अधिक न रहता। भोर होते ही थकनके साथ ही यह पीड़ा भी शान्त हो जाती। तड़का हुआ, उसने हाथ मुंह धोया, बंसी उठायी और तालाबकी ओर चल खड़ा हुआ। भावजें फूलोंकी वर्षा किया करतीं, बूढ़े चौधरी पैंतरे बदलते रहते और भाई लोग तीखी निगाहसे देखा करते, पर अपनी धुनका पूरा बांका गुमान उन लोगोंके बीचमेंसे इस तरह अकड़ता चला जाता जैसे कोई मस्त हाथी कुत्तोंके बीचसे निकल जाता है। उसे सुमार्गपर लानेके लिये क्या क्या उपाय नहीं किये गये। बाप समझाता, बेटा ऐसी राह चलो जिसमें तुम्हें भी चार पैसे मिलें और गृहस्थीका भी निर्वाह हो। भाइयोंके भरोसे कबतक रहोगे, मैं पका आम हूं—आज टपक पड़ूं या कल। फिर तुम्हारा निबाह कैसे होगा। भाई बात भी न पूछेंगे, भावजोंका रङ्ग देखही रहे हो। तुम्हारे भी दो लड़केबाले हैं, उनका भार कैसे सम्भालोगे? खेतीमें जी न लगे, कहो कानिस्टबिलीमें भरती करा दूं। बांका गुमान खड़ा खड़ा यह सब सुनता, लेकिन पत्थरका देवता था—कभी न पसीजता। इन महाशयके अत्याचारका

दण्ड उनकी स्त्री बेचारीको भोगना पड़ता था, कड़ी मेहनतके घरके जितने काम होते वह उसीके सिर थापे जाते, उपले पाथती कुएंसे पानी लाती, आटा पीसती और इतनेपर भी जेठानियां सीधे मुँह बात न करतीं, वाक्यबाणोंसे छेदा करतीं। एक बार जब वह पतिसे कई दिन रूठी रही तो बांकेगुमान कुछ नर्म हुए। बापसे जाकर बोले, मुझे कोई दूकान खुलवा दीजिये। चौधरीने परमात्माको धन्यवाद दिया। फूले न समाये। कई सौ रुपये लगाकर कपड़ेकी दूकान खुलवा दी। गुमानके भाग जागे। तन-जेबके चुननदार कुरते बनवाये, मलमलका साफा धानी रंगमें रंगवाया। सौदा बिके या न बिके, उसे लाभ ही होता था। दूकान खुली हुई है, दस-पांच गाढ़े मित्र जमे हुए हैं, चरसके दम और खियालकी तानें उड़ रही हैं—

"चल झटपट री, जमुना तट री, खड़ो नटखट रे,"

इस तरह तीन महीने चैनसे कटे। बांकेगुमानने खूब दिल खोलकर अरमान निकाले। यहांतक कि सारी लागत लाभ हो गयी। टाटके टुकड़ेके सिवा और कुछ न बचा। बूढ़े चौधरी कुएंमें गिरने चले, भावजोंने घोर आन्दोलन मचाया; अरे राम! हमारे बच्चे और हम चीथड़ोंको तरसें, गाढ़ेका एक कुर्त्ता भी न नसीब हो और इतनी बड़ी दूकान इस निखट्टूका कफन बन गयी। अब कौन मुँह दिखावेगा? कौन मुँह लेकर घरमें पैर रखेगा? किन्तु बांकेगुमानके तीवर जरा भी मैले न हुए। वही मुँह लिये वह फिर घरमें आया और फिर वही पुरानी चाल चलने लगा। कानूनदां

बितान उसके यह ठाठ-बाट देखकर जल जाता। मैं सारे दिन पसीना बहाऊं, मुझे नैनसुखका कुर्त्ता भी न मिले, यह अपाहिज सारे दिन चारपाई तोड़े और यों बन-ठनकर निकले। ऐसे वस्त्र तो शायद मुझे अपने ब्याहमें भी न मिले होंगे। मीठे शानके हृदयमें भी कुछ ऐसे ही विचार उठते थे। अन्तमें जब यह जलन न सही गयी और अग्नि भड़की तो एक दिन कानूनदां बितानकी पत्नी गुमानके सारे कपड़े उठा लायी और उनपर मिट्टीका तेल उड़ेलकर आग लगा दी। ज्वाला उठी। सारे कपड़े देखते-देखते जलकर राख हो गये। गुमान रोते थे। दोनों भाई खड़े तमाशा देखते थे। बूढ़े चौधरीने यह दृश्य देखा और सिर पीट लिया। यह द्वेषाग्नि है। घरको जलाकर तब बुझेगी।

३

यह ज्वाला तो थोड़ी देरमें शान्त हो गयी, परन्तु हृदयकी आग ज्यों-की-त्यों दहकता रही। अन्तमें एक दिन बूढ़े चौधरीने घरके सब मेम्बरोंको एकत्रित किया और इस गूढ़ विषयपर विचार करने लगे कि बेड़ा कैसे पार हो। बितानसे बोले, बेटा, तुमने आज देखा, बात-की-बातमें सैकड़ों रुपयोंपर पानी फिर गया, अब इस तरह निर्वाह होना असम्भव है। तुम समझदार हो, मुकद्दमे-मामले करते हो, कोई ऐसी राह निकालो कि घर डूबनेसे बचे। मैं तो यह चाहता था कि जबतक चोला रहे, सबको समेटे रहूं, मगर भगवानके मनमें कुछ और ही है।

बितानकी नीतिकुशलता अपनी चतुर सहगामिनीके सामने

लोप हो जाती थी। वह अभी इसका उत्तर सोच ही रहे थे कि श्रीमताजी बोल उठीं,—दादाजी! अब समझाने-बुझानेसे काम न चलेगा, सहते-सहते हमारा कलेजा पक गया। बेटेको जितनी पीर बापको होगी, भाइयोंको उतनी क्या, उसकी आधी भी नहीं हो सकती। मैं तो साफ कहती हूं,—गुमानका तुम्हारी कमाईमें हक है, उन्हें कञ्चनके कौर खिलाओ और चाँदीके हिण्डोलेमें झुलाओ। हममें न इतना बूता है न इतना कलेजा, हम अपनी झोंपड़ी अलग बना लेंगे, हां जो कुछ हमारा हो वह हमको मिलना चाहिये। बांट-बखरा कर दीजिये। बलासे चार आदमी हँसेंगे, अब कहांतक दुनियाको लाज ढोयें।

नीतिज्ञ बितानपर इस प्रबल वक्तृताका असर हुआ, वह उनके विकसित और प्रमुदित चेहरेसे झलक रहा था। उनमें स्वयं इतना साहस न था कि इस प्रस्तावको इतनी स्पष्टतासे व्यक्त कर सकते। नीतिज्ञ महाशय गम्भीरतासे बोले, जायदाद मुश्तरका, मन्कूला या ग़ैर मन्कूला आपके हीन हयात तक़सीम की जा सकती है, इसकी नज़ीरें मौजूद हैं। जमींदारको साक़ितुल् मिल्कियत करनेका कोई इस्तहक़ाक नहीं है।

अब मन्दबुद्धि शानकी बारी आयी। पर बेचारा किसान, बैलोंके पीछे आंखें बन्द करके चलनेवाला, ऐसे गूढ़ विषयपर कैसे मुंह खोलता। दुविधामें पड़ा हुआ था। तब उसकी सत्यवक्ता धर्मपत्नीने अपनी जेठानीका अनुसरणकर यह कठिन कार्य सम्पन्न किया। बोलो, बड़ी बहिनने जो कुछ कहा है उसके सिवा और

दूसरा उपाय नहीं है। कोई तो कलेजा तोड़-तोड़कर कमावे। मगर पैसे-पैसेको तरसे, तन ढांकनेको वस्त्रतक न मिलें और कोई सुखकी नींद सोवे और हाथ बढ़ा-बढ़ाके खाय, ऐसी अन्धेर नगरी में अब हमारा निबाह न होगा।

शान चौधरीने भी इस प्रस्तावका मुक्तकंठसे अनुमोदन किया। अब बूढ़े चौधरी गुमानसे बोले,—क्यों बेटा, तुम्हें भी यही मंजूर है? अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। यह आग अब भी बुझ सकती है। काम सबको प्यारा होता है, चाम किसीका प्यारा नहीं होता, बोलो क्या बोलते हो? कुछ काम-धन्धा करोगे या अभी आंखें नहीं खुलीं।

गुमानमें धैर्य्यकी कमी नहीं थी। बातोंको इस कान सुन उस कान उड़ा देना उसका नित्यकर्म्म था। किन्तु भाइयोंकी इस "ज़न मुरीदी" पर उसे क्रोध आ गया। बोला, भाइयोंकी जो इच्छा है वही मेरे मनमें भी लगी हुई है, मैं भी इस जंजालसे अब भागना चाहता हूं, मुझसे न मजूरी हुई, न होगी। जिसके भाग्यमें चक्की पीसना बदा हो, वह पीसे। मेरे भाग्यमें तो चैन करना लिखा हुआ है, मैं क्यों अपना सिर ओखलीमें दूं। मैं तो किसीसे काम करनेको नहीं कहता। आप लोग क्यों मेरे पीछे पड़े हुए हैं! अपनी-अपनी फिक्र कीजिये, मुझे आध सेर आटेकी कमी नहीं है।

इस तरहकी सभायें कितनी ही बार हो चुकी थीं, परन्तु इस देशकी सामाजिक और राजनैतिक सभाओंकी तरह इनसे भी

कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता था। दो-तीन दिन गुमानने घरपर खाना नहीं खाया, जतनसिंह ठाकुर शौकीन आदमी थे, उन्हींकी चौपालमें पड़ा रहता। अन्तमें बूढ़े चौधरी गये और मनाके लाये, अब फिर वह पुरानी गाड़ी अड़तो, मचलती, हिलती चलने लगी।

४

पांडेके घरके चूहोंकी तरह चौधरीके घरके बच्चे भी सयाने थे। उनके लिये मिट्टीके घोड़े और लकड़ीकी नावें, कागजकी नावें थीं। फलोंके विषयमें उनका ज्ञान असीम था। गूलर और जंगली बेरके सिवा कोई ऐसा फल न था जिसे वह बीमारियोंका घर न समझते हों। लेकिन गुरदीनके खोंचेमें ऐसा प्रबल आकर्षण था कि उसकी ललकार सुनते ही उनका सारा ज्ञान व्यर्थ हो जाता था। साधारण बच्चोंकी तरह यदि वह सोते भी हों तो चौंक पड़ते थे। गुरदीन उस गांवमें साप्ताहिक फेरे लगाता था। उसके शुभागमनकी प्रतीक्षा और आकांक्षामें कितने ही बालकोंको बिना किण्डरगार्टनकी रंगीन गोलियोंके ही; संख्यायें और दिनोंके नाम याद हो गये थे। गुरदीन बूढ़ा-सा मैला-कुचैला आदमी था, किन्तु आसपासमें उसका नाम उपद्रवी लड़कोंके लिये हनुमानमन्त्रसे कम न था। उसकी आवाज सुनते ही उसके खोंचेपर बालकोंका ऐसा धावा होता कि मक्खियोंको असंख्य सेनाको भी रणस्थलसे भागना पड़ता था, और जहां बच्चोंके लिये मिठाइयां थीं वहां गुरदीनके

पास माताओंके लिये उससे भी ज्यादा मीठी बातें थीं। माँ कितना ही मना करती रहे, बार-बार पैसे न रहनेका बहाना करे, पर गुरदीन चटपट मिठाइयोंका दोना बच्चेके हाथमें रख ही देता और स्नेहपूर्ण भावसे कहता, बहूजी! पैसोंकी कुछ चिन्ता न करो, फिर मिलते रहेंगे, कहीं भगे थोड़े ही जाते हैं। नारायण तुमको बच्चे दिये हैं तो मुझे भी उनकी न्योछावर मिल जाती है, उन्हींकी बदौलत मेरे बालबच्चे भी जीते हैं। अभी क्या, ईश्वर इनका मौर तो दिखावे, फिर देखना कैसे ठनगन करता हूं।

गुरदीनरामका यह व्यवहार चाहे वाणिज्य नियमोंके प्रतिकूल ही क्यों न हो, चाहे 'नौ नक्द न तेरह उधार' वाली कहावत अनुभव-सिद्ध ही क्यों न हो किन्तु मिष्टभाषी गुरदीनको कभी अपने इस व्यवहारपर पछताने या उसमें संशोधन करनेकी ज़रूरत नहीं हुई।

मंगलका शुभ दिन था, बच्चे बड़ी बेचैनीसे अपने दरवाजोंपर खड़े गुरदीनकी राह देख रहे थे। कई उत्साही लड़के पेड़ोंपर चढ़ गये थे, और कई अनुरागसे विवश होकर गांवसे बाहर निकल गये थे। सूर्य्य भगवान अपना सुनहरा थाल लिये पूरबसे पच्छिममें जा पहुंचे थे कि गुरदीन आता हुआ दिखायी दिया। लड़कोंने दौड़कर उसका दामन पकड़ा और आपसमें खींचातानी होने लगी। कोई कहता था, मेरे घर चलो, कोई अपने घरका न्योता देता था। सबसे पहिले भानुचौधरीका मकान पड़ा, गुर-

दीनने अपना खोंचा उतार दिया। मिठाइयोंकी लूट शुरू हो गयी। बालकों और स्त्रियोंका ठट्ठ लग गया। हर्षविषाद, सन्तोष और लोभ, ईर्षा और जलनकी नाट्यशाला सज गयी। कानूनदाँ बितानकी पत्नी अपने तीनों लड़कोंको लिये हुए निकली। शानकी पत्नी भी अपने दोनों लड़कोंके साथ उपस्थित हुई। गुरदीनने मीठी बातें करनी शुरू कीं। पैसे चोलीमें रखे, धेले-धेलेकी मिठाई दी, धेलेधेलेका आशीर्वाद। लड़के दोने लिये उछलते कूदते घरमें दाखिल हुए। अगर सारे गांवमें कोई ऐसा बालक था जिसने गुरदीनकी उदारतासे लाभ न उठाया हो तो वह बांके गुमानका लड़का धान था।

यह कठिन था कि बालक धान अपने भाइयों, बहिनोंको हँस हँस और उछल-उछल कर मिठाइयां खाते देखे और सब्र कर जाय। उसपर तुर्रा यह कि वह उसे मिठाइयां दिखा दिखाकर ललचाते और चिढ़ाते थे। बेचारा धान चीखता था और अपनी माताका आंचल पकड़-पकड़कर दरवाजेकी तरफ खींचता था। पर वह अबला क्या करे। उसका हृदय बच्चेके लिये ऐंठ-ऐंठकर रह जाता था। उसके पास एक पैसा भी नहीं था। अपने दुर्भाग्य-पर, जेठानियोंकी निठुरतापर, और सबसे ज्यादा अपने पतिके निखट्टूपनपर कुढ़ कुढ़कर रह जाती थी। अपना आदमी ऐसा निकम्मा न होता तो क्यों दूसरोंका मुंह देखना पड़ता, क्यों दूसरों के धक्के खाने पड़ते। उसने धानको गोदमें उठा लिया और प्यार-से दिलासा देने लगी, बेटा! रोवो मत, अबकी गुरदीन आवेगा

तो मैं तुम्हें बहुत-सी मिठाई ले दूंगी, मैं इससे अच्छी मिठाई बाजारसे मंगवा दूंगी,तुम कितनी मिठाई खावोगे। यह कहते-कहते उसकी आंखें भर आयीं, आह ! यह मनहूस मंगल आज ही फिर आवेगा और फिर यही बहाने करने पड़ेंगे ! हाय ! अपना प्यारा बच्चा धेलेकी मिठाईको तरसे और घरमें किसीका पत्थर-सा कलेजा न पसीजे ! वह बेचारी तो इन चिन्ताओंमें डूबी हुई थी और धान किसी तरह चुपही न होता था। जब कुछ वश न चला तो मांको गोदसे ज़मीनपर उतरकर लोटने लगा, और रो रोकर दुनियां सिरपर उठा ली। मांने बहुत बहलाया, फुसलाया, यहांतक कि उसे बच्चेके इस हठपर क्रोध आ गया। मानवहृदयके रहस्य कभी समझमें नहीं आते। कहां तो बच्चेको प्यारसे बिपटाती थी, कहां ऐसी झल्लाई कि उसे दो तीन थप्पड़ ज़ोरसे लगाये और घुड़ककर बोली, चुप रह अभागे ! तेराही मुंह मिठाई खानेका है ? अपने दिनको नहीं रोता। मिठाई खाने चला है।

बांका गुमान अपनी कोठरीके द्वारपर बैठा हुआ यह कौतुक बड़े ध्यानसे देख रहा था। वह इस बच्चेको बहुत चाहता था। इस वक्तके थप्पड़ उसके हृदयमें तेज़ भालेके समान लगे और चुभ गये, शायद उनका अभिप्राय भी यही था। धुनियां रूईको धुनकनेके लिये तांतपर चोट लगाता है।

जिस तरह पत्थर और पानीमें आग छिपी रहती है उसी तरह मनुष्यके हृदयमें भी,—चाहे वह कैसाही क्रूर और कठोर क्यों न

हो, उत्कृष्ट और कोमल भाव छिपे रहते हैं। गुमानकी आंखें भर आयीं, आंसूकी बून्दें बहुधा हमारे हृदयकी मलिनताको उज्ज्वल कर देती हैं। गुमान सचेत हो गया। उसने जाकर बच्चेको गोदमें उठा लिया और अपनी पत्नीसे करुणोत्पादक स्वरमें बोला, "बच्चेपर इतना क्रोध क्यों करती हो। तुम्हारा दोषी मैं हूं, मुझको जो दण्ड चाहे दो, परमात्माने चाहा तो कलसे लोग इस घरमें मेरा और मेरे बालबच्चोंका आदर करेंगे। तुमने आज मुझे सदाके लिये इस तरह जगा दिया मानों मेरे कानोंमें शंख-नादकर मुझे कर्मपथमें प्रवेश करनेका उपदेश दिया हो।"

१

वेंदो ग्राममें महादेव सोनार एक सुविख्यात आदमी था। वह अपने सायबानमें प्रातःसे सन्ध्यातक अंगेठीके सामने बैठा हुआ खट-खट किया करता था। यह लगातार ध्वनि सुननेके लोग इतने अभ्यस्त हो गये थे कि जब किसी कारणसे वह बन्द हो जाती तो जान पड़ता था कोई चीज गायब हो गयी है। वह नित्यप्रति एक बार प्रातःकाल अपने तोतेका पिंजरा लिये कोई भजन गाता हुआ तालाबकी ओर जाता था। उस धुंधले प्रकाशमें उसका जर्जर शरीर, पोपला मुँह और झुकी हुई कमर देखकर किसी अपरिचित मनुष्यको उसके पिशाच होनेका भ्रम हो सकता था। ज्योंही लोगोंके कानोंमें आवाज आती "सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता" लोग समझ जाते कि भोर हो गया।

महादेवका पारिवारिक जीवन सुखमय न था। उसके तीन

पुत्र थे, तीन बहुएं थीं, दर्जनों नाती-पोते थे ; लेकिन उसके बोझको हल्का करनेवाला कोई न था। लड़के कहते जबतक, दादा जीते हैं हम जीवनका आनन्द भोग लें, फिर तो यह ढोल गले पड़ेही गा। बेचारे महादेवको कभी-कभी निराहार ही रहना पड़ता। भोजनके समय उसके घरमें साम्यवादका ऐसा गगन-भेदी निर्घोष होता कि वह भूखा ही उठ आता और नारियलका हुक्का पीता हुआ सो जाता। उसका व्यावसायिक जीवन और भी अशान्तिकारक था। यद्यपि वह अपने काममें निपुण था, उसकी खटाई औरोंसे कहीं ज्यादा शुद्धिकारक और उसकी रासायनिक क्रियायें कहीं ज्यादा कष्टसाध्य थीं, तथापि उसे आये दिन शक्की और धैर्यशून्य प्राणियोंके अपशब्द सुनने पड़ते थे, पर महादेव अविचलित गाम्भीर्यसे सिर झुकाये सब कुछ सुना करता। ज्यों-ही यह कलह शान्त होता वह अपने तोतेकी ओर देखकर पुकार उठता, 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता'। इस मन्त्रके जपतेही उसके चित्तको पूर्ण शान्ति हो जाती थी।

२

एक दिन संयोगवश किसी लड़केने पिंजरेका द्वार खोल दिया। तोता उड़ गया। महादेवने सिर उठाकर जो पिंजरेकी ओर देखा तो उसका कलेजा सन्नसे हो गया। तोता कहां गया! उसने फिर पिंजरेको देखा, तोता गायब था। महादेव घबराकर उठा और इधर-उधर खपरैलोंपर निगाह दौड़ाने लगा। उसे संसारमें कोई वस्तु प्यारी थी तो वह यही तोता था। लड़के-

बालों, नाती-पोतोंसे उसका जी भर गया था। लड़कोंकी चुल-बुलसे उसके काममें विघ्न पड़ता था। बेटोंसे उसे प्रेम न था, इसलिये नहीं कि वे निकम्मे थे, बल्कि इसलिये कि उनके कारण वह अपने आनन्ददायी कुलहड़ोंकी नियमित संख्यासे वंचित रह जाता था। पड़ोसियोंसे उसे चिढ़ थी, इसलिये कि वह उसकी अंगेठीसे आग निकाल ले जाते थे। इन समस्त विघ्न-बाधाओंसे उसके लिये कोई पनाह थी तो वह यहां तोता था। इससे उसे किसी प्रकारका कष्ट न होता था। वह अब उस अवस्थामें था जब मनुष्यको शान्ति-भोगके सिवा और कोई इच्छा नहीं रहती।

तोता एक खपरैलपर बैठा था। महादेवने पिंजरा उतार लिया और उसे दिखाकर कहने लगा –'आ, आ, 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता'। लेकिन गांव और घरके लड़के एकत्र होकर चिल्लाने और तालियां बजाने लगे, ऊपरसे कौवोंने कांव-कांवकी रट लगायी। तोता उड़ा और गांवसे बाहर निकलकर एक पेड़-पर जा बैठा। महादेव खाली पिंजरा लिये उसके पीछे दौड़ा, हां दौड़ा। लोगोंको उसकी द्रुतगामितापर अचम्भा हो रहा था। मोहकी इससे सुन्दर, इससे सजीव, इससे भावमय कल्पना नहीं की जा सकती।

दोपहर हो गया था। किसान लोग खेतोंसे चले आ रहे थे, उन्हें विनोदका अच्छा अवसर मिला। महादेवको चिढ़ानेमें सभीको मजा आता था, किसीने कंकड़ फेंके, किसीने तालियां बजायीं, तोता फिर उड़ा और यहांसे दूर आमके बागमें एक

पेड़की फुनगीपर जा बैठा। महादेव फिर खाली पिंजरा लिये मेढ़ककी भांति उचकता हुआ चला। बागमें पहुंचा तो पैरके तलुवोंसे आग निकल रही थी, सिर चक्कर खा रहा था। जब जरा सावधान हुआ तो फिर पिंजरा उठाकर कहने लगा, 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता'। तोता फुनगीसे उतरकर नीचेकी एक डालपर आ बैठा; किन्तु महादेवकी ओर सशंक नेत्रोंसे ताक रहा था। महादेवने समझा डर रहा है। वह पिंजरेको छोड़कर आप एक दूसरे पेड़की आड़में छिप गया। तोतेने चारों ओर गौरसे देखा, निःशंक हो गया, उतरा और आकर पिंजरेके ऊपर बैठ गया। महादेवका हृदय उछलने लगा। 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त' का मंत्र जपता हुआ धीरे-धीरे तोतेके समीप आया, और लपका कि तोतेको पकड़ लें, किन्तु तोता हाथ न आया, फिर पेड़पर जा बैठा।

सांझतक यही हाल रहा, तोता कभी इस डालपर जाता, कभी उस डालपर। कभी पिंजरेपर आ बैठता, कभी पिंजरेके द्वारपर बैठ अपने दाना-पानीकी प्यालियोंको देखता फिर उड़ जाता। बुड्ढा अगर मूर्तिमान मोह था तो तोता मूर्तिमती माया। यहांतक कि शाम हो गयी, माया और मोहका यह संग्राम अन्धकारमें विलीन हो गया।

२

रात हो गयी। चारों ओर निबिड़ अन्धकार छा गया। तोता न जाने पत्तोंमें कहां छिपा बैठा था। महादेव जानता था कि

रातको तोता कहीं उड़कर नहीं जा सकता और न पिंजरेहीमें आ सकता है, तिसपर भी वह इस जगहसे हिलनेका नाम न लेता था। आज उसने दिनभर कुछ नहीं खाया, रातके भोजनका समय भी निकल गया, पानीकी एक बून्द भी उसके कंठमें न गयी, लेकिन उसे न भूख थी न प्यास। तोतेके बिना उसे अपना जीवन निस्सार, शुष्क और सूना जान पड़ता था। वह दिन-रात काम करता था, इसलिये कि यह उसको अन्तःप्रेरणा थी, जीवनके और काम इसलिये करता था कि आदत थी। इन कामोंमें उसे अपनी सजीवताका लेशमात्र भी ज्ञान न होता था। तोता ही वह वस्तु था जो उस चेतनाको याद दिलाता था। उसका हाथसे जाना जीवनका देह त्याग करना था।

महादेव दिनभरका भूखा-प्यासा, थका-मांदा रह-रहकर झपकियां ले लेता था, किन्तु क्षणमें फिर चौंककर आंखें खोल देता और उस विस्तृत अन्धकारमें उसकी आवाज सुनायी देती—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता'।

आधी रात गुजर गयी थी। सहसा वह कोई आहट पाकर चौंका तो देखा कि एक दूसरे वृक्षके नीचे एक धुन्धला दीपक जल रहा है और कई आदमी बैठे हुए आपसमें कुछ बातें कर रहे हैं। वह सब चीलम पी रहे थे। तमाखूकी महँकने उसे अधीर कर दिया। उच्च स्वरसे बोला—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' और उन आदमियोंकी ओर चिलम पीने चला, किन्तु जिस प्रकार बन्दूककी आवाज सुनते ही हिरन भाग जाते हैं उसी प्रकार उसे

आते देख वह सब-के-सब उठकर भागे। कोई इधर गया कोई उधर। महादेव चिल्लाने लगा—'ठहरो, ठहरो!' एकाएक उसे ध्यान आ गया, यह सब चोर हैं। वह जोरसे चिल्ला उठा—'चोर चोर, पकड़ो पकड़ो!' चोरोंने पीछे फिरकर भी न देखा।

महादेव दीपकके पास गया तो उसे एक कलसा रखा हुआ मिला। मोरचेसे काला हो रहा था। महादेवका हृदय उछलने लगा। उसने कलसेमें हाथ डाला तो मोहरें थीं। उसने एक मोहर बाहर निकाली और दीपकके उजालेमें देखा, हां मोहर थी। उसने तुरत कलसा उठा लिया, दीपक बुझा दिया और पेड़के नीचे छिपकर बैठ रहा। साहुसे चोर बन गया।

उसे फिर शंका हुई ऐसा न हो चोर लौट आयें और मुझे अकेला देखकर मोहरें छीन लें। उसने कुछ मोहरें कमरमें बांधीं फिर एक सूखी लकड़ीसे जमीनकी मिट्टी हटाकर कई गड्ढे बनाये। उन्हें मोहरोंसे भरकर मिट्टीसे ढांक दिया।

४

महादेवके अन्तःनेत्रोंके सामने अब एक दूसरा ही जगत था, चिन्ताओं और कल्पनाओंसे परिपूर्ण। यद्यपि अभी कोषके हाथसे निकल जानेका भय था, पर अभिलाषाओंने अपना काम शुरू कर दिया। एक पक्का मकान बन गया, सराफेकी एक भारी दूकान खुल गयी, निज सम्बन्धियोंसे फिर नाता जुड़ गया, विलासकी सामग्रियां एकत्रित हो गयीं, तब तीर्थयात्रा करने चले और वहांसे लौटकर बड़े समारोहसे यज्ञ, ब्रह्मभोज हुआ। इसके

पश्चात् एक शिवालय और कुआं बन गया, एक उद्यान भी आरोपित हो गया और वहां वह नित्यप्रति कथा पुराण सुनने लगा। साधु सन्तोंका आदर-सत्कार होने लगा।

अकस्मात् उसे ध्यान आया, कहीं चोर आ जायं तो मैं भागूंगा क्योंकर। उसने परीक्षा करनेके लिये कलसा उठाया और दो सौ पगतक बेतहाशा भागा हुआ चला गया। जान पड़ता था उसके पैरोंमें पर लग गये हैं। चिन्ता शान्त हो गयी। इन्हीं कल्पनाओंमें रात व्यतीत हो गयी। उषाका आगमन हुआ, हवा जगी, चिड़ियां गाने लगीं। सहसा महादेवके कानोंमें आवाज आयी—

"सत्त गुरुदत्त शिवदत्तदाता,
रामके चरनमें चित्त लागा।"

यह बोल सदैव महादेवकी जिह्वापर रहता था, दिनमें सहस्रों ही बार ये शब्द उसके मुखसे निकलते थे, पर उनका धार्मिक भाव कभी उसके अन्तःकरणको स्पर्श न करता था। जैसे किसी बाजेसे राग निकलता है उसी प्रकार उसके मुंहसे यह बोल निकलता था, निरर्थक और प्रभावशून्य। तब उसका हृदयरूपी वृक्ष पत्र-पल्लव-विहीन था। यह निर्मल वायु उसे गुंजरित न कर सकती थी। पर अब उस वृक्षमें कोंपले और शाखाएं निकल आयी थीं, इस वायु-प्रवाहसे झूम उठा, गूंजित हो गया।

अरुणोदयका समय था। प्रकृति एक अनुरागमय प्रकाशमें

डूबी हुई थी। उसी समय तोता परोंको जोड़े हुए ऊंची डालीसे उतरा, जैसे आकाशसे कोई तारा टूटे, और आकर पिंजरेमें बैठ गया। महादेव प्रफुल्लित होकर दौड़ा और पिंजरेको उठाकर बोला—"आओ आत्माराम, तुमने कष्ट तो बहुत दिया, पर मेरा जीवन भी सफल कर दिया। अब तुम्हें चांदीके पिंजरेमें रखूंगा और सोनेसे मढ़ दूंगा।" उसके रोम-रोमसे परमात्माके गुणानुवादकी ध्वनि निकलने लगी। प्रभु! तुम कितने दयावान हो, यह तुम्हारा असीम वात्सल्य है, नहीं तो मुझ जैसा पापी, पतित प्राणी, कब इस कृपाके योग्य था। इन पवित्र भावोंसे उसकी आत्मा विह्वल हो गयी, वह अनुरक्त होकर बोल उठा—

"सत्त गुरुदत्त शिवदत्तदाता,
रामके चरनमें चित्त लागा।"

उसने एक हाथमें पिंजरा लटकाया, बगलमें कलसा दबाया और घर चला।

५

महादेव घर पहुंचा तो अभी कुछ अन्धेरा था। रास्तेमें एक कुत्तेके सिवाय और किसीसे भेंट न हुई और कुत्तेको मोहरोंसे विशेष प्रेम नहीं होता। उसने कलसेको एक नादमें छिपा दिया और उसे कोयलेसे अच्छी तरह ढांककर अपनी कोठरीमें रख आया। जब दिन निकल आया तो वह सीधे पुरोहितजीके घर जा पहुंचा। पुरोहितजी पूजापर बैठे सोच रहे थे। कल ही मुक-

दमेकी पेशी है और अभीतक हाथमें कौड़ी भी नहीं—जजमानोंमें कोई सांस भी नहीं लेता। इतनेमें महादेवने पालागन किया। पण्डितजीने मुंह फेर लिया, यह अमङ्गलमूर्त्ति कहांसे आ पहुंची, मालूम नहीं दाना भी मयस्सर होगा या नहीं। रुष्ट होकर पूछा—"क्या है जी, क्या कहते हो, जानते नहीं कि हम इस बेला पूजा-पर रहते हैं ?" महादेवने कहा—"महाराज आज मेरे यहां सत्य-नारायणकी कथा है।"

पुरोहितजी विस्मित हो गये, कानोंपर विश्वास न हुआ। महादेवके घर कथाका होना उतनी ही असाधारण घटना थी जितनी अपने घरसे किसी भिखारीके लिये भीख निकालना। पूछा—"आज क्या है ?"

महादेव बोला—"कुछ नहीं, ऐसी ही इच्छा हुई कि आज भगवानकी कथा सुन लूं।"

प्रभातहीसे तैयारी होने लगी। बेंदो और अन्य निकटवर्ती गांवोंमें सुपारी फिरी। कथाके उपरान्त भोजका भी नेवता था। जो सुनता आश्चर्य करता। यह आज रेतमें दूब कैसे जमी !

सन्ध्या समय जब सब लोग जमा हो गये, पण्डितजी अपने सिंहासनपर विराजमान हुए तो महादेव खड़ा होकर उच्च स्वरसे बोला—भाइयो, मेरी सारी उम्र छल-कपटमें कट गयी। मैंने न जाने कितने आदमियोंको दगा दिया, कितना खरेको खोटा किया, पर अब भगवानने मुझपर दया की है, वे मेरे मुंहकी कालिख-को मिटाना चाहते हैं। मैं आप सभी भाइयोंसे ललकारकर

कहता हूं कि जिसका मेरे जिम्मे जो कुछ आता हो, जिसकी जमा मैंने मार ली हो, जिसके चोखे मालको खोटा कर दिया हो, वह आकर अपनी एक-एक कौड़ी चुका ले,अगर कोई यहां न आ सका हो तो आप लोग उससे जाकर कह दीजिये,कलसे एक महीनेतक जब जी चाहे आवे और अपना हिसाब चुकता कर ले। गवाही-साखीका काम नहीं। सब लोग सन्नाटेमें आ गये। कोई मार्मिक भावसे सिर हिलाकर बोला—"हम कहते न थे? किसीने अविश्वाससे कहा—"क्या खाके भरेगा,हजारोंका टोटल हो जायगा।"

एक ठाकुरने ठठोलीकी—और जो लोग सुरधाम चले गये?

महादेवने उत्तर दिया—उनके घरवाले तो होंगे।

किन्तु इस समय लोगोंको वसूलीकी इतनी इच्छा न थी जितनी यह जानने की कि इसे इतना धन मिल कहांसे गया। किसीको महादेवके पास आनेका साहस न हुआ। देहातके आदमी थे, गड़े मुर्दे उखाड़ना क्या जानें। फिर प्रायः लोगोंको याद भी न था कि उन्हें महादेवसे क्या पाना है और ऐसे पवित्र अवसरपर भूल-चूक हो जानेका भय उनका मुंह बन्द किये हुए था। सबसे बड़ी बात यह थी कि महादेवकी साधुताने उन्हें वशीभूत कर लिया था।

अचानक पुरोहितजी बोले—तुम्हें याद है, मैंने तुम्हें एक कंठा बनानेके लिये सोना दिया था और तुमने कई माशे तौलमें उड़ा दिये थे।

महादेव—हां याद है, आपका कितना नुकसान हुआ होगा?

पुरोहित—५०) से कम न होगा।

महादेवने कमरसे दो मोहर निकालीं और पुरोहितजीके सामने रख दीं।

पुरोहितको लोलुपतापर टीकायें होने लगीं। यह बेईमानी है, बहुत तो दो-चार रुपयेका नुकसान हुआ होगा। बेचारेसे ५०) ऐंठ लिये। नारायणका भी डर नहीं। बननेको पंडित, पर नीयत ऐसी खराब! राम राम!!

लोगोंको महादेवसे एक श्रद्धा-सी हो गयी। एक घंटा बीत गया, पर उन सहस्रों मनुष्योंसे एक भी न खड़ा हुआ। तब महादेवने फिर कहा—"मालूम होता है, आप लोग अपना-अपना हिसाब भूल गये हैं। इसलिये आज कथा होने दीजिये, मैं एक महीनेतक आपकी राह देखूंगा। इसके पीछे तीर्थयात्रा करने चला जाऊंगा। आप सब भाइयोंसे मेरी विनती है कि आप मेरा उद्धार करें।

एक महीनेतक महादेव लेनदारोंकी राह देखता रहा। रातको चोरोंके भयसे नींद न आती। अब वह कोई काम न करता। शराबका चसका भी छूटा। साधु-अभ्यागत जो द्वारपर आ जाते उनका यथायोग्य सत्कार करता। दूर-दूर उसका सुयश फैल गया। यहांतक कि महीना पूरा हो गया और एक आदमी भी हिसाब चुकाने न आया। अब महादेवको ज्ञात हुआ कि संसारमें कितना धर्म, कितना सद्व्यवहार है। अब उसे मालूम हुआ कि संसार बुरोंके लिये बुरा है, पर अच्छोंके लिये अच्छा है।

६

इस घटनाको हुए ५० वर्ष बीत चुके हैं। आप वेंदो जाइये तो दूरहीसे एक सुनहरा कलस दिखायी देता है। यह ठाकुरद्वारेका कलस है। उसमें मिला हुआ एक पक्का तालाब है जिसमें खूब कमल खिले रहते हैं। उसकी मछलियां कोई नहीं पकड़ता। तालाबके किनारे एक विशाल समाधि है। यही आत्मारामका स्मृतिचिह्न है। उनके सम्बन्धमें विभिन्न किम्बदन्तियां प्रचलित हैं। कोई कहता है, उनका रत्नजटित पिंजरा स्वर्गको चला गया कोई कहता है वह 'सत्त गुरुदत्त' कहते हुए अन्तर्ध्यान हो गये। पर यथार्थ यह है कि उस पक्षीरूपी चन्द्रको किसी बिल्लीरूपी राहुने ग्रस लिया। लोग कहते हैं, आधीरातको अभीतक तालाब-के किनारे आवाज आती है—

"सत्त गुरुदत्त शिवदत्तदाता,
रामके चरनमें चित्त लागा।"

महादेवके विषयमें भी कितनीही जनश्रुतियां हैं। उनमें सबसे मान्य यह है कि आत्मारामके समाधिस्थ होनेके बाद वह कई संन्यासियोंके साथ हिमालय चले गये और वहांसे लौटकर न आये। उनका नाम आत्माराम प्रसिद्ध हो गया।

बूढ़ी काकी

बुढ़ापा बहुधा बचपनका पुनरागमन हुआ करता है। बूढ़ी काकीमें जिह्वास्वादके सिवा और कोई चेष्टा शेष न थी और न अपने कष्टोंकी ओर आकर्षित करनेका रोनेके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा ही। समस्त इन्द्रियां, नेत्र, हाथ और पैर जवाब दे चुके थे। पृथ्वीपर पड़ी रहतीं और जब घरवाले कोई बात उनकी रक्षाके प्रतिकूल करते या भोजनका समय टल जाता, उसका परिमाण पूर्ण न होता अथवा बाजारसे कोई वस्तु आती और उन्हें न मिलती तो ये रोने लगती थीं। उनका रोना-सिसकना साधारण रोना न था, वह गला फाड़-फाड़कर रोती थीं।

उनके पतिदेवको स्वर्ग सिधारे कालान्तर हो चुका था। बेटे तरुण हो-होकर चल बसे थे। अब एक भतीजेके सिवाय और कोई न था। उसी भतीजेके नाम उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लिख दी थी। भतीजेने सम्पत्ति लिखाते समय तो खूब लम्बे-चौड़े वादे किये, परन्तु वे सब वादे केवल कुली डिपोके दलालोंके दिखाये हुए सब्ज बाग थे। यद्यपि उस सम्पत्तिकी वार्षिक आय डेढ़-दो सौ रुपयेसे कम न थी तथापि बूढ़ी काकीको पेटभर भोजन भी

कठिनाईसे मिलता था। इसमें उनके भतीजे पण्डित बुद्धिरामका अपराध था, अथवा उनकी अर्द्धाङ्गिनी श्रीमती रूपाका, इसका निर्णय करना सहज नहीं। बुद्धिराम स्वभावके सज्जन थे, किन्तु उसी समयतक जबतक कि उनके कोषपर कोई आंच न आये। रूपा स्वभावसे तीव्र थी सही, पर ईश्वरसे डरती थी। अतएव बूढ़ी काकीको उसकी तीव्रता उतनी न खलती थी जितनी बुद्धिरामकी भलमनसाहत।

बुद्धिरामको कभी-कभी अपने अत्याचारका खेद होता था। विचारते कि इसी सम्पत्तिके कारण मैं इस समय भलामानुष बना बैठा हूं। यदि मौखिक आश्वासन और सूखी सहानुभूतिसे स्थितिमें सुधार हो सकता तो उन्हें कदाचित् कोई आपत्ति न होती, परन्तु विशेष व्ययका भय उनकी सचेष्टाको दबाये रखता था। यहांतक कि यदि द्वारपर कोई भला आदमी बैठा होता और बूढ़ी काकी उस समय अपना राग अलापने लगतीं तो वह आग हो जाते और घरमें आकर उन्हें जोरसे डांटते। लड़कोंको बुड्ढोंसे स्वाभाविक विद्वेष होता ही है और फिर जब माता-पिताका यह रंग देखते तो बूढ़ी काकीको और भी सताया करते। कोई चुटकी काटकर भागता, कोई उनपर पानीकी कुल्ली कर देता। काकी चीख मारकर रोतीं, परन्तु यह बात प्रसिद्ध थी कि वह केवल खानेके लिये रोती हैं, अतएव उनके संताप और आर्त्तनादपर कोई ध्यान नहीं देता था। हां, काकी कभी क्रोधातुर होकर बच्चोंको गालियां देने लगतीं तो रूपा घटनास्थलपर अवश्य आ पहुंचती।

इस भयसे काकी अपनी जिह्वा-कृपाणका कदाचित् ही प्रयोग करती थीं, यद्यपि उपद्रव-शांतिका यह उपाय रोनेसे कहीं अधिक उपयुक्त था।

सम्पूर्ण परिवारमें यदि काकीको किसीसे अनुराग था, तो वह बुद्धिरामकी छोटी लड़की लाडलीसे था। लाडली अपने दोनों भाइयोंके भयसे अपने हिस्सेकी मिठाई, चबेना बूढ़ी काकीके पास बैठकर खाया करती थी। यहीं उसका रक्षागार था और यद्यपि काकीकी शरण उनकी लोलुपताके कारण बहुत महंगी पड़ती थी, तथापि भाइयोंके अन्यायसे कहीं सुलभ थी। इसी स्वार्थानुकूलताने उन दोनोंमें प्रेम और सहानुभूतिका आरोपण कर दिया था।

रातका समय था। बुद्धिरामके द्वारपर सहनाई बज रही थी और गांवके बच्चोंका झुण्ड विस्मयपूर्ण नेत्रोंसे गानेका रसास्वादन कर रहा था। चारपाइयोंपर मेहमान विश्राम करते हुए नाइयोंसे मुक्कियां लगवा रहे थे। समीप ही खड़ा हुआ भाट बिरदावली सुना रहा था और कुछ भावज्ञ मेहमानोंके "वाह, वाह" पर ऐसा खुश हो रहा था मानों इस वाह-वाहका यथार्थमें वही अधिकारी है। दो-एक अंगरेजी पढ़े हुए नवयुवक इन व्यवहारोंसे उदासीन थे। वे इस गँवार-मंडलीमें बोलना अथवा सम्मिलित होना अपनी प्रतिष्ठाके प्रतिकूल समझते थे।

आज बुद्धिरामके बड़े लड़के सुखरामका तिलक आया है। यह उसीका उत्सव है। घरके भीतर स्त्रियां गा रही थीं और

रूपा मेहमानोंके लिये भोजनके प्रबन्धमें व्यस्त थी। भट्टियोंपर कड़ाह चढ़े थे। एकमें पूरियां-कचौरियां निकल रही थीं, दूसरेमें अन्य पकवान बनते थे। एक बड़े हंडेमें मसालेदार तरकारी पक रही थी। घी और मसालेकी क्षुधावर्द्धक सुगन्धि चारों ओर फैली हुई थी।

बूढ़ी काकी अपनी कोठरीमें शोकमय विचारकी भांति बैठी हुई थीं। यह स्वाद-मिश्रित सुगन्धि उन्हें बेचैन कर रही थी। वे मन-ही-मन विचार कर रही थीं, सम्भवतः मुझे पूड़ियां न मिलेंगी। इतनी देर हो गयी, कोई भोजन लेकर नहीं आया, मालूम होता है, सब लोग भोजन कर चुके। मेरे लिये कुछ न बचा। यह सोचकर उन्हें रोना आया, परन्तु अशकुनके भयसे वह रो न सकीं।

"आहा! कैसी सुगन्धित है! अब मुझे कौन पूछता है? जब रोटियों ही के लाले पड़े हैं तब ऐसे भाग्य कहां कि भरपेट पूड़ियां मिलें?"—यह विचार कर उन्हें रोना आया, कलेजेमें एक हूक-सी उठने लगी। परन्तु रूपाके भयसे उन्होंने फिर भी मौन धारण कर लिया।

बूढ़ी काकी देरतक इन्हीं दुःखदायक विचारोंमें डूबी रहीं। घी और मसालोंकी सुगन्धि रह-रहकर मनको आपेसे बाहर किये देती थी। मुंहमें पानी भर-भर आता था। पूड़ियोंका स्वाद स्मरण करके हृदयमें गुदगुदी होने लगती थी। किसे पुकारूं; आज लाडली बेटी भी नहीं आयी। दोनों छोकड़े सदा

दिक किया करते हैं। आज उनका भी कहीं पता नहीं। कुछ मालूम तो होता कि क्या बन रहा है।

बूढ़ी काकीकी कल्पनामें पूड़ियोंकी तस्वीर नाचने लगी। खूब लाल-लाल, फूली-फूली, नरम-नरम होंगी। रूपाने भली-भांति मोयन दिया होगा। कचौरियोंमें अजवाइन और इलायची-की महँक आ रही होगी। एक पूरी मिलती जो जरा हाथमें लेकर देखती। क्यों न चलकर कड़ाहके सामने ही बैठूं। पूड़ियां छन-छनकर तैरती होंगी। कड़ाहसे गरम-गरम निकालकर थाल-में रखी जाती होंगी। फूल हम घरमें भी सूंघ सकते हैं; परन्तु वाटिकामें कुछ और बात होती है। इस प्रकार निर्णय करके बूढ़ी काकी उकड़ू बैठकर हाथोंके बल सरकती हुई बड़ी कठि-नाईसे चौखटसे उतरीं और धीरे-धीरे रेंगती हुई कड़ाहके पास जा बैठीं। यहां आनेपर उन्हें उतना ही धैर्य्य हुआ जितना भूखे कुत्तेको खानेवालेके सम्मुख बैठनेमें होता है।

रूपा उस समय कायभारसे उद्विग्न हो रही थी। कभी इस कोठेमें जाती, कभी उस कोठेमें, कभी कड़ाहके पास आती, कभी भण्डारमें जाती। किसीने बाहरसे आकर कहा,—महाराज ठंडई मांग रहे हैं। ठंडई देने लगी। इतनेमें फिर किसीने आकर कहा—भाट आया है, उसे कुछ दे दो। भाटके लिये सीधा निकाल रही थी कि एक तीसरे आदमीने आकर पूछा—"अभी भोजन तैयार होनेमें कितना विलम्ब है? जरा ढोल मजीरा उतार दो।" बेचारी अकेली स्त्री दौड़ते-दौड़ते व्याकुल हो रही थी, झुंझलाती

थी, कुढ़ती थी, परन्तु क्रोध प्रकट होनेका अवसर न पाती थी। भय होता, कहीं पड़ोसिनें यह न कहने लगें कि इतनेमें ही उबल पड़ीं। प्याससे स्वयं उसका कण्ठ सूख रहा था। गर्मीके मारे फुँकी जाती थी, परन्तु इतना अवकाश भी नहीं था कि जरा पानी पी ले अथवा पंखा लेकर झले। यह भी खटका था कि जरा आंख हटी और चीजोंकी लूट मची। इस अवस्थामें उसने बूढ़ी काकीको कड़ाहके पास बैठा देखा तो जल गयी। क्रोध न रुक सका। इसका भी ध्यान न रहा कि पड़ोसिनें बैठी हुई हैं मनमें क्या कहेंगी, पुरुषोंमें लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे। जिस प्रकार मेढक केचुयेपर झपटता है, उसी प्रकार वह बूढ़ी काकीपर झपटी और उन्हें दोनों हाथोंसे झिंझोड़कर बोली—ऐसे पेटमें आग लगे, पेट है या भाड़? कोठरीमें बैठते हुए क्या दम घुटता था? अभी मेहमानोंने नहीं खाया, भगवानको भोग नहीं लगा, तबतक धैर्य न हो सका? आकर छातीपर सवार हो गयीं। जल जाय ऐसी जीभ। दिनभर खाती न होतीं तो न जाने किसकी हांड़ीमें मुंह डालतीं? गांव देखेगा तो कहेगा कि बुढ़िया भरपेट खानेको नहीं पाती, तब तो इस तरह मुंह बाये फिरती है। डाइन न मरे न मांचा छोड़े। नाम बेचनेपर लगी है। नाक कटवाकर दम लेगी। इतना ठूंसती है, न जाने कहां भस्म हो जाता है। लो! भला चाहती हो तो जाकर कोठरीमें बैठो, जब घरके लोग खाने लगेंगे तब तुम्हें भी मिलेगा। तुम कोई देवी नहीं हो कि चाहे किसीके मुंहमें पानी न जाय परन्तु तुम्हारी

पूजा पहले हो जाय। बूढ़ी काकीने सिर न उठाया, न रोईं, न बोलीं। चुपचाप रेंगती हुई अपनी कोठरीमें चली गयीं। आघात ऐसा कठोर था, कि हृदय और मस्तिष्ककी सम्पूर्ण शक्तियां, सम्पूर्ण विचार और सम्पूर्ण भार उसी ओर आकर्षित हो गये थे। नदीमें जब करारका कोई वृहद् खण्ड कटकर गिरता है तो आस-पासका जलसमूह चारों ओरसे उसी स्थानको पूरा करनेके लिये दौड़ता है।

भोजन तैयार हो गया। आंगनमें पत्तल पड़ गये। मेहमान खाने लगे। स्त्रियोंने जेवनार-गीत गाना आरम्भ कर दिया। मेहमानोंके नाई और सेवकगण भी उसी मंडलीके साथ, किन्तु कुछ हटकर, भोजन करने बैठे थे, परन्तु सभ्यतानुसार जबतक सब-के सब खा न चुके कोई उठ नहीं सकता था। दो-एक मेहमान जो कुछ पढ़े-लिखे सेवकोंके दीर्घाहारपर झूंझला रहे थे। वे इस बन्धनको व्यर्थ और बे-सिर-पैरकी बात समझते थे।

बूढ़ी काकी अपनी कोठरीमें जाकर पश्चात्ताप कर रही थीं कि मैं कहां-से-कहां गयी। उन्हें रूपापर क्रोध नहीं था। अपनी जल्दबाजीपर दुःख था। सच ही तो है जबतक मेहमान लोग भोजन न कर चुकेंगे घरवाले कैसे खायेंगे। मुझसे इतनी देर भी नहीं रहा गया। सबके सामने पानी उतर गया। आज जबतक कोई बुलाने न आयेगा न जाऊंगी।

मन-ही-मन इसी प्रकार विचार कर वह बुलावेकी प्रतीक्षा करने लगीं। परन्तु घीका रुचिकर सुवास बड़ा ही धैर्य्य-परी-

क्षक प्रतीत हो रहा था। उन्हें एक-एक पल एक-एक युगके समान मालूम होता था। अब पत्तल बिछ गये होंगे। अब मेहमान आ गये होंगे। लोग हाथ-पैर धो रहे हैं, नाई पानी दे रहा है। मालूम होता है लोग खाने बैठ गये। जेवनार गाया जा रहा है, यह विचार कर वह मनको बहलानेके लिये लेट गयीं। धीरे-धीरे एक गीत गुनगुनाने लगीं। उन्हें मालूम हुआ कि मुझे गाते देर हो गयी। क्या इतनी देरतक लोग भोजन कर ही रहे होंगे। किसीकी आवाज नहीं सुनायी देती। अवश्य ही लोग खा-पीकर चले गये। मुझे कोई बुलाने नहीं आया। रूपा चिढ़ गयी है क्या जाने न बुलाये, सोचती हो कि आप ही आवेंगी, वह कोई मेहमान तो हैं नहीं, जो उन्हें बुलाऊं। बूढ़ी काकी चलनेके लिये तैयार हुईं। यह विश्वास कि एक मिनटमें पूड़ियां और मसालेदार तरकारियां सामने आयेंगी उनको स्वादेन्द्रियोंको गुद-गुदाने लगा। उन्होंने मनमें तरह-तरहके मनसूबे बांधे—पहले तरकारीसे पूरियां खाऊंगी, फिर दही और शक्करसे; कचौरियां रायतेके साथ मजेदार मालूम होंगी। चाहे कोई बुरा माने चाहे भला, मैं तो मांग-मांगकर खाऊंगी। यही न लोग कहेंगे कि इन्हें विचार नहीं? कहा करें, इतने दिनोंके बाद पूड़ियां मिल रही है तो मुंह जूठा करके थोड़े ही उठ जाऊंगी।

वह उकड़ूं बैठकर हाथोंके बल खसकती आंगनमें आयीं। परन्तु हाय दुर्भाग्य! अभिलाषाने अपने पुराने स्वभावके अनुसार समयकी मिथ्या कल्पना की थी। मेहमान-मंडली अभी बैठी

हुई थी। कोई खाकर उंगलियां चाटता था, कोई तिर्छे नेत्रोंसे देखता था कि और लोग अभी खा रहे हैं या नहीं? कोई इस चिन्तामें था कि पत्तलपर पूड़ियां छूटी जाती हैं किसी तरह इन्हें भीतर रख लेता। कोई दही खाकर जीभ चटकारता था, परन्तु दूसरा दोना मांगते संकोच करता था कि इतनेमें बूढ़ी काकी रेंगती हुई उनके बीचमें जा पहुंची। कई आदमी चौंककर उठ खड़े हुए। पुकारने लगे—अरे यह कौन बुढ़िया है? यह कहांसे आ गयी? देखो किसीको छू न दे।

पं० बुद्धिराम काकीको देखते ही क्रोधसे तिलमिला गये। पूड़ियोंका थाल लिये खड़े थे। थालको जमीनपर पटक दिया जिस प्रकार निर्दयी महाजन अपने किसी बेईमान और भगोड़े असामीको देखते ही झपटकर उसका टेंटुआ पकड़ लेता है उसी तरह लपककर उन्होंने बूढ़ी काकीके दोनों हाथ पकड़े और घसीटते हुए लाकर उन्हें अन्धेरी कोठरीमें धमसे पटक दिया। आशा-रूपी बाटिका लूके एक ही झोकेसे नष्ट-विनष्ट हो गयी।

मेहमानोंने भोजन किया। घरवालोंने भोजन किया। बाजे-वाले, धोबी, चमार भी भोजन कर चुके, परन्तु बूढ़ी काकीको किसीने न पूछा। बुद्धिराम और रूपा दोनों ही बूढ़ी काकीको उसकी निर्लज्जताके लिये दण्ड देनेका निश्चय कर चुके थे। उनके बुढ़ापेपर, दीनतापर, हत ज्ञानपर किसीको करुणा न आती थी। अकेली लाडली उनके लिये कुढ़ रही थी।

लाडलीको काकीसे अत्यन्त प्रेम था। बेचारी भोली लड़की

थी। बालविनोद और चंचलताकी उसमें गंधतक न थी। दोनों बार जब उसके माता-पिताने काकीको निर्दयतासे घसीटा तो लाडलीका हृदय ऐंठकर रह गया। वह झुंझला रही थी कि यह लोग काकीको क्यों बहुत-सी पूड़ियां नहीं दे देते? क्या मेहमान सब-की-सब खा जायेंगे? और यदि काकीने मेहमानोंके पहले खा लिया तो क्या बिगड़ जायगा? वह काकीके पास जाकर उन्हें धैर्य देना चाहती थी; परन्तु माताके भयसे न जाती थी। उसने अपने हिस्सेकी पूड़ियां बिल्कुल न खायी थीं। अपनी गुड़ियोंकी पिटारीमें बन्द कर रखी थीं। वह उन पूड़ियोंको काकीके पास ले जाना चाहती थी। उसका हृदय अधीर हो रहा था। बूढ़ी काकी मेरी बात सुनते ही उठ बैठेंगी। पूड़ियाँ देखकर कैसी प्रसन्न होंगी! मुझे खूब प्यार करेंगी!

रातके ग्यारह बज गये थे। रूपा आंगनमें पड़ी सो रही थी। लाडलीकी आंखोंमें नींद न आती थी। काकीको पूड़ियां खिलानेकी खुशी उसे सोने न देती थी। उसने गुड़ियोंकी पिटारी सामने ही रखी थी। जब विश्वास हो गया कि अम्मां सो रही हैं, तो वह चुपकेसे उठी और विचारने लगी, कैसे चलूं। चारों ओर अन्धेरा था। केवल चूल्होंमें आग चमक रही थी: और चूल्होंके पास एक कुत्ता लेटा हुआ था। लाडलीकी दृष्टि द्वारके सामनेवाली नीमकी ओर गयी। उसे मालूम हुआ कि उसपर हनुमानजी बैठे हुए हैं। उनकी पूंछ, उनकी गदा, सब

स्पष्ट दिखलायी दे रही थी। मारे भयके उसने आंखें बन्द कर लीं, इतनेमें कुत्ता उठ बैठा, लाडलीको ढाढ़स हुआ। कई सोये हुए मनुष्योंके बदले एक जागता हुआ कुत्ता उसके लिये अधिकतर धैर्यका कारण हुआ। उसने पिटारी उठायी और बूढ़ी काकीकी कोठरीकी ओर चली।

बूढ़ी काकीको केवल इतना स्मरण था कि किसीने मेरे हाथ पकड़कर घसीटे, फिर ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई पहाड़पर उड़ाये लिये जाता है। उनके पैर बार-बार पत्थरोंसे टकराये तब किसीने उन्हें पहाड़परसे पटका, वे मूर्च्छित हो गयीं।

जब वे सचेत हुईं तो किसीकी जरा भी आहट न मिलती थी। समझा कि सब लोग खा-पीकर सो गये और उनके साथ मेरी तकदीर भी सो गयी। रात कैसे कटेगी? राम! क्या खाऊं, पेटमें अग्नि धधक रही है? हा! किसीने मेरी सुध भी न ली! क्या मेरा ही पेट काटनेसे धन जुड़ जायगा? इन लोगोंको इतनी भी दया नहीं आती कि न जाने बूढ़िया कब मर जाय? उसका जी क्यों दुखावें? मैं पेटकी रोटियां ही खाती हूं कि और कुछ? इसपर यह हाल! मैं अन्धी अपाहिज ठहरी, न कुछ सुनूं न बूझूं, यदि आंगनमें चली गयी तो क्या बुद्धिरामसे इतना भी कहते न बनता था कि काकी अभी लोग खा रहे हैं, फिर आना। मुझे घसीटा, पटका। उन्हीं पूड़ियोंके लिये रूपाने सबके सामने गालियां दीं। उन्हीं पूड़ियोंके लिये इतनी दुर्गति करनेपर भी उनका पत्थरका कलेजा न पसीजा। सबको खिलाया,

मेरी बाततक न पूछी। जब तब ही न दीं तब अब क्या देंगी ?

यह विचारकर काकी निराशामय संतोषके साथ लेट गयीं। ग्लानिसे गला भर-भर आता था, परन्तु मेहमानोंके भयसे रोती न थीं।

सहसा उनके कानोंमें आवाज आयी—"काकी उठो, मैं पूड़ियां लायी हूं।"

काकीने लाडलीकी बोली पहचानी। चटपट उठ बैठीं। दोनों हाथोंसे लाडलीको टटोला और उसे गोदमें बैठा लिया।

लाडलीने पूड़ियां निकालकर दीं। काकीने पूछा—"क्या तुम्हारी अम्मांने दी हैं?" लाडलीने कहा—"नहीं, यह मेरे हिस्से-की हैं। काकी पूड़ियोंपर टूट पड़ीं। पांच मिनटमें पिटारी खाली हो गयी। लाडलीने पूछा—काकी, पेट भर गया? जैसे थोड़ी-सी वर्षा ठंडकके स्थानपर और भी गर्मी पैदा कर देती है उसी भांति इन थोड़ी-सी पूड़ियोंने काकीकी क्षुधा और इच्छाको उत्तेजित कर दिया था। बोलीं- "नहीं बेटी, जाकर अम्मांसे और मांग लाओ।" लाडलीने कहा-"अम्मां सोती है,जगाऊंगी तो मारेगी।"

काकीने पिटारीको फिर टटोला। उसमें कुछ खुर्चन गिरे थे। उन्हें निकालकर वे खा गयीं। बार-बार वे होंठ चाटती थीं। चटखारें भरती थीं।

हृदय मसोस रहा था कि और पूड़ियां कैसे पाऊं। सन्तोष-सेतु जब टूट जाता है तब इच्छाका बहाव अपरिमित हो जाता

है। मतवालोंको मदका स्मरण करना उन्हें मदान्ध बनाता है। काकीका अधोर मन इच्छाके प्रबल प्रवाहमें बह गया। उचित और अनुचितका विचार जाता रहा। वे कुछ देरतक उस इच्छाको रोकती रहीं। सहसा लाडलीसे बोलीं—"मेरा हाथ पकड़कर वहां ले चलो जहां मेहमानोंने बैठकर भोजन किया है।"

लाडली उनका अभिप्राय समझ न सकी। उसने काकीका हाथ पकड़ा और ले जाकर जूठे पत्तलोंके पास बिठला दिया। दीन, क्षुधातुर, हतज्ञान, बुढ़िया पत्तलोंसे पूड़ियोंके टुकड़े चुन-चुनकर भक्षण करने लगी। ओह! दही कितना स्वादिष्ट था, कचौरियां कितनी सलोनी, खस्ता कितने सुकोमल। काकी बुद्धिहीन होते हुए भी इतना जानती थीं कि मैं वह काम कर रही हूं जो मुझे कदापि न करना चाहिये। मैं दूसरोंके जूठे पत्तल चाट रही हूं। परन्तु बुढ़ापा तृष्णा-रोगका अन्तिम समय है, जब सम्पूर्ण इच्छायें एक ही केन्द्रपर आ लगती हैं। बूढ़ी काकीमें यह केन्द्र उनकी स्वादेन्द्रिय थी।

ठीक उसी समय रूपाकी आंखें खुलीं। उसे मालूम हुआ कि लाडली मेरे पास नहीं है। वह चौंकी, चारपाईके इधर-उधर ताकने लगी कि कहीं नीचे तो नहीं गिर पड़ी। उसे वहां न पाकर वह उठ बैठी तो क्या देखती है कि लाडली जूठे पत्तलोंके पास चुपचाप खड़ी है और बूढ़ी काकी पत्तलोंपरसे पूड़ियोंके टुकड़े उठा-उठाकर खा रही हैं। रूपाका हृदय सन्न हो गया। किसी गायको गर्दनपर छुरी चलते देखकर जो अवस्था उसकी होती,

वही उस समय हुई। एक ब्राह्मणी दूसरोंका जूठा पत्तल टटोले ; इससे अधिक शोकमय दृश्य असम्भव था। पूड़ियोंके कुछ ग्रासों-के लिये उसकी चचेरी सास ऐसा पतित और निकृष्ट कर्म कर रही है! यह वह दृश्य था जिसे देखकर देखनेवालोंके हृदय काँप उठते हैं। ऐसा प्रतीत होता मानों जमीन रुक गयी, आसमान चक्कर खा रहा है। संसारपर कोई नई विपत्ति आनेवाली है। रूपाको क्रोध न आया। शोकके सम्मुख क्रोध कहां? करुणा और भयसे उसकी आंखें भर आयीं। इस अधर्मके पापका भागी कौन है? उसने सच्चे हृदयसे गगन-मण्डलकी ओर हाथ उठाकर कहा—"परमात्मा, मेरे बच्चोंपर दया करो, इस अधर्मका दण्ड मुझे मत दो, नहीं तो हमारा सत्यानाश हो जायगा।

रूपाको अपनी स्वार्थपरता और अन्याय इस प्रकार प्रत्यक्ष-रूपमें कभी न देख पड़ा था। वह सोचने लगी,—हाय! कितनी निर्दय हूं। जिसकी सम्पत्तिसे मुझे दो सौ रुपया वार्षिक आय हो रही है, उसकी यह दुर्गति! और मेरे कारण। हे दयामय भग-वन्! मुझसे बड़ी भारी चूक हुई है, मुझे क्षमा करो। आज मेरे बेटेका तिलक था। सैकड़ों मनुष्योंने भोजन पाया। मैं उनके इशारोंकी दासी बनी रही। अपने नामके लिये सैकड़ों रुपये व्यय कर दिये, परन्तु जिसकी बदौलत हजारों रुपये खाये उसे इस उत्सवमें भी भरपेट भोजन न दे सकी। केवल इसी कारण तो कि वह वृद्धा है, असहाय है!

रूपाने दिया जलाया, अपने भण्डारका द्वार खोला और एक

थालीमें सम्पूर्ण सामग्रियां सजाकर लिये हुए बूढ़ी काकीकी ओर चली।

आधी रात जा चुकी थी, आकाशपर तारोंके थाल सजे हुए थे और उनपर बैठे हुए देवगण स्वर्गीय पदार्थ सजा रहे थे, परन्तु उनमें किसीको वह परमानन्द प्राप्त न हो सकता था जो बूढ़ी काकीको अपने सम्मुख थाल देखकर प्राप्त हुआ। रूपाने कण्ठावरुद्ध स्वरमें कहा—"काकी उठो, भोजन कर लो। मुझसे आज बड़ी भूल हुई, उसको बुरा न मानना। परमात्मासे प्रार्थना कर दो कि वह मेरा अपराध क्षमा कर दें।"

भोले-भाले बच्चोंकी भांति, जो मिठाइयां पाकर मार और तिरस्कार सब भूल जाते हैं, बूढ़ी काकी वैसे ही सब भुलाकर बैठी हुई खाना खा रही थीं। उनके एक-एक रोयेंसे सच्ची सदिच्छायें निकल रही थीं और रूपा बैठी इस स्वर्गीय दृश्यका आनन्द लूटनेमें निमग्न थी।

Published By—
BAIJNATH KEDIA.
AND

Printed by Kashinath Tiwary, at 'BANIK PRESS'
1, Sircar Lane, Calcutta.